'विवेक और साधना' के समर्थ लेखक

परमपूज्य श्री केदारनाथजी

को

सविनय

—नारायणप्रसाद

प्रकाशकीय

संतों की वाणी प्रत्येक व्यक्ति के लिए वड़ी उपयोगी होती हैं। दुनिया के मायाजाल में जब आदमी अशांत होकर भटकता हैं तो संतों के जीवन-चरित और उनके वचन उसे सही रास्ते के दर्शन कराते है। हमें हर्ष है कि संतों की पावन वाणी को पाठकों के लिए सुलभ कराने में 'मण्डल' अपना यत्किंचित योग देता रहा है। संत-वाणी, बुद्ध-वाणी, महावीर-वाणी, संत-सुधा-सार आदि इसी दिशा के प्रकाशन है। इसी शृंखला में अब महाराष्ट्र के महान् संत तुकाराम के चुने हुए विचार-रत्नों की यह मणिका पाठकों के हाथों मे पहुच रही है। पाठकों की सुविधा के लिए पुस्तक की सामग्री को विभिन्न वर्गो मे विभाजित कर दिया गया है।

हम चाहते थे कि तुकाराम के मूल अभग भी अनुवाद के साथ में देते; लेकिन उससे पुस्तक का आकार वहुत वढ़ जाता और मूल्य की दृष्टि से पुस्तक सामान्य स्थिति के पाठकों के लिए दुर्लभ हो जाती। आकार कम करने की विवशता के कारण न केवल मूल अभंगों को ही छोड़ा गया है, अपितु कहीं-कहीं अभंगों के अंग-मात्र ही दिये गए हैं।

हमें विश्वास है कि पाठक इस पुस्तक के वचनों का पठन-पाठन ही नही, मनन-चिन्तन भी करेंगे और अपने दैनिक स्वाध्याय मे इस पुस्तक का उपयोग करेंगे।

—मंत्री

दो शब्द

संत तुकाराम उन महात्माओं में से थे, जो भूले-भटकों को रास्ता दिखाने के लिए पैदा होते हैं। उनकी सरल-सुहानी दिव्य वाणी हर मराठे की जबान पर है। देव-पूजा या तीर्थ-यात्रा के अवसर पर किसी भी अन्य संत के नाम का ऐसा यशगान नहीं होता, जैसा तुकाराम के नाम का।

सम्पत्ति को वह आध्यात्मिक मार्ग की बाधा और आदमी को आदमी से अलग करनेवाली बाड़ समझते थे। आत्मानुभूति के बाद उन्होंने पहला काम यह किया कि अपने कुटुम्ब के अपने हिस्से की सम्पत्ति के सारे अधिकार-पत्रों को नदी में बहा दिया। उसके बाद यद्यपि वह जीविकोपार्जन करते रहे, तथापि उन्होंने अपने को पूर्णतया भगवद्-कृपा पर छोड़ दिया।

शिवाजी की भेंट की हुई धन-सम्पत्ति को उन्होंने ठुकरा दिया। वह जो उपदेश देते थे उसीके अनुसार आचरण भी करते थे। यह कहना ज्यादा सही होगा कि उनके कार्य ही उपदेश का काम करते थे। वे भेद-भाव को न माननेवाले, सब जीवों को समान समझनेवाले और आत्म-प्रेम को विश्व-प्रेम में मिला देनेवाले अद्वैत की प्रति-मूर्ति थे। उनके गीत उनके प्रशान्त जीवन के अनुरूप थे। मराठों ने राजनैतिक अनुशासन शिवाजी से सीखा तो आध्यात्मिक अनुशासन तुकाराम से। वह जन-साधारण में से उठे थे और सर्व-साधारण की ही भाषा में बोलते थे।

उनके सच्चे जीवन की झांकी उनके अभंगों में मिलती है। भगवत्-स्फूर्ति-युक्त अवस्था में चार करोड़ अभंग उनके मुंह से निकले, जिनमें से सिर्फ साढ़े चार हजार मिलते हैं। वे कहते हैं, "मुझे स्वप्न में सद्गुरु ने उपदेश देकर कृतार्थ किया। उसके बाद तुरन्त ही कविता की स्फूर्ति हो आई।" उनके अभंग वेद-मंत्रों के समान हैं। महाराष्ट्र में वे 'अध्यात्म-मंदिर के कलश' माने जाते हैं।

मलाड, बंबई — नारायणप्रसाद जैन

विषय-सूची

तुकाराम-गाथा-सार

: १ :
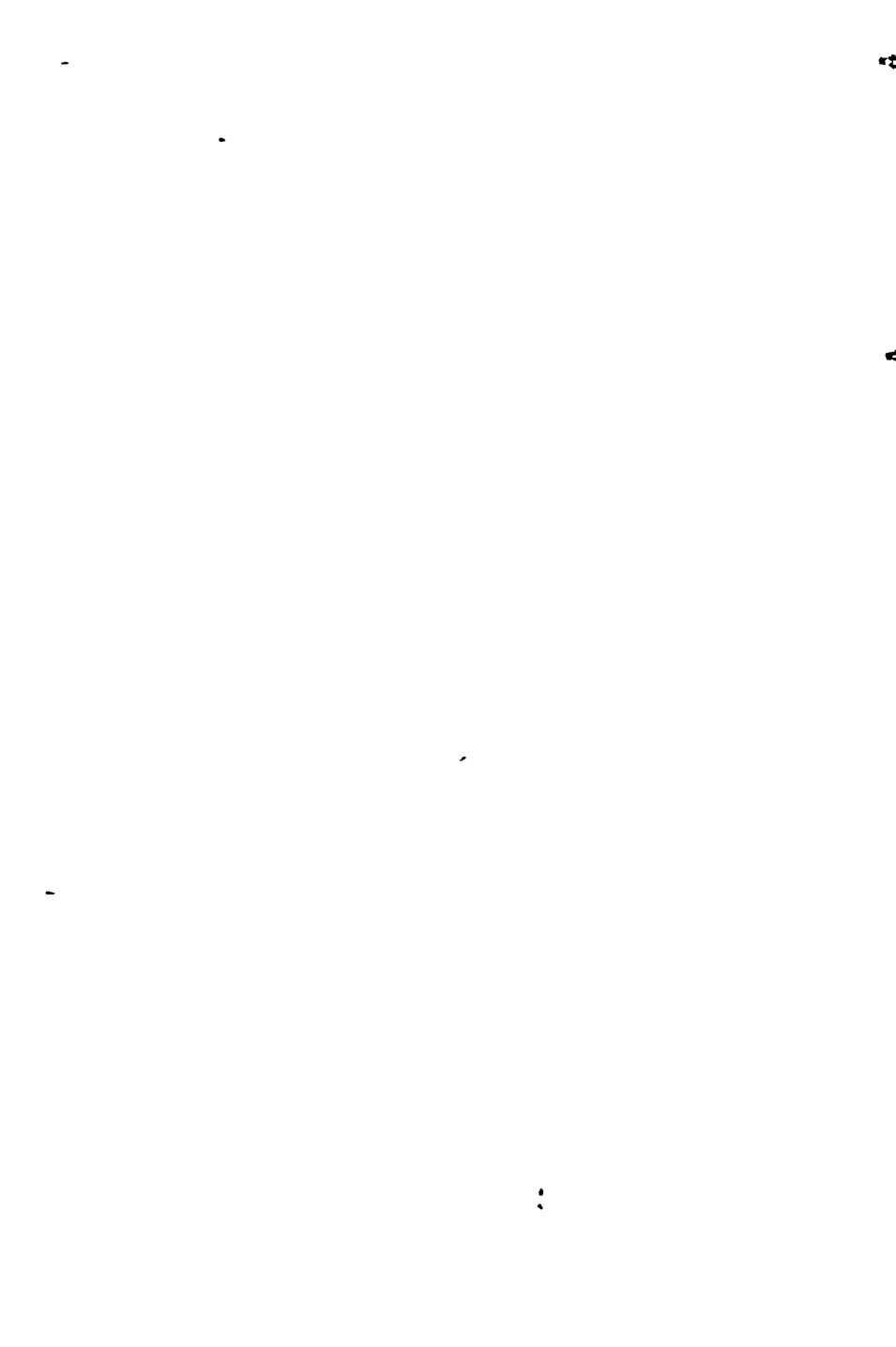
आत्म-परिचय

मैं शूद्रवंश में पैदा हुआ, इसीलिए मुझमें दम्भ नहीं रहा। हे भगवान्, तू ही अब मेरा मा-बाप है। वेद-पठन का अधिकार मुझे नहीं है। मैं सब प्रकार से दीन और जातिहीन हूं।

अच्छा हुआ हे भगवान, कि तूने मुझे किसान बनाया, वरना मैं घमंड से भर गया होता। हे ईश्वर, तूने अच्छा किया, क्योंकि अब तुकाराम नाचता है और तेरे चरण छूता है। अगर मुझमें कुछ विद्या होती तो बड़े झंझट में फंस जाता। तब मैं संतों की सेवा न करता और मुफ्त में मर जाता। अगर मैं मामूली किसान न होता तो मुझमें दुनिया भर का घमंड आ जाता और यमराज के मार्ग से चलने लगता। बड़प्पन के अभिमान से आदमी नरक में चला जाता है।

स्वयं पांडुरंग भगवान के साथ स्वप्न में आकर नामदेव महाराज ने मुझे जगाया। उन्होंने मुझसे कहा, "तुम कविता करो, व्यर्थ की बातें मत करो। मैंने सौ करोड़ अभंग लिखने का संकल्प किया था, उनमें से जितने बाक़ी हैं, उतने तुम लिख डालो।"

मेरा द्रव्य और धान्य लोगों के घर-घर में भरा हुआ है, और मैं अपना पेट भिक्षा से भरता हूं। प्रभु ने मेरी सब विषयों की वासना नष्ट कर डाली है और मेरे कुटुम्ब की सेवा वही करता है।

इस मृत्यु-लोक मे हरि के नाम को छोडकर मुझे और कुछ प्रिय नहीं लगता। मेरे चित्त को सारे प्रपच से घृणा हो गई है। सोना, रुपया, हमें मिट्टी के समान हैं, माणिक पत्थर की तरह हैं। सारे जग को भुलानेवाली स्त्रियों से मुझे विरक्ति हो गई है।

जव मुझे भान भी नही था, ससार की चिन्ता नही थी, उस समय पिता चल वसे। हे प्रभो, तेरा मेरा ही राज्य है, दूसरे का काम नहीं। स्त्री मर गई, वह छूट गई। देव ने माया छुडा दी। लडके मर गए, अच्छा हुआ। देव ने माया से मुक्त कर दिया। मेरे देखते मा मर गई; चिन्ता से मुक्त हो गया।

ससार की वार्ता मुझसे सहन नही होती और किसीको यह कहना कि 'यह मेरा है' मुझे नही सुहाता। देह को सुख देनेवाले उपचारो से मुझे मुख नही होता; उनका आदर अथवा भोग विपवत् अथवा वन्धनवत् लगता है। प्रतिप्ठा या गौरव मिलने पर मेरा जी वहुत ही अकुलाता है।

मैं जो कुछ वोलता हूं, मन्तो का उच्छिष्ट है। मैं जो कुछ वोलता हू, देव ही मुझसे वुलवाता है। उसका गुह्य अर्थ-भाव क्या है, सो भी वही जानता है।

कोई कहेगा कि यह तुकाराम कविता करता है; पर कविता की वाणी मेरी अपनी नही है। मेरी कविता का प्रकार युक्ति का नहीं है। मुझसे विश्व-म्भर ही वुलवाता है। मैं पामर अर्थ-भेद क्या जानूं? जो गोविन्द वुलवाता है, सो वोलता हूं। यहां 'मैं' नाम की कोई चीज नही है, सव-कुछ स्वामी की ही सत्ता है।

परमार्थ-विरोधी वचन मुझसे सहन नहीं होते। उन्हे सुनकर मेरा मन वडा दुःखी होता है। इसलिए मुझे किसीकी संगति सहन नहीं होती। एकान्त-वास ही प्रिय लगता है। देह की भावना और वासना का संग मुझे पसंद नहीं

आता। उसमें जी ऊब गया है। आशा-मोह के जाल में पड़ने से दुःख बढ़ता है और देव-आराधन में अन्तर पड़ जाता है।

मैं मान और दम्भ को थूककर कीर्तन करता हूँ। मैं देह से उदास हो गया हूं। एक देव के सिवा मुझे कोई चाह नहीं। अर्थ को अनर्थ सरीखा मानकर दूर रख दिया। मैं सब उपाधियों से अलग रहकर पवित्र हुआ हूं।

ससार में जो कुछ है, ब्रह्मरूप है, ऐसे अनुभव का मैं ऐश्वर्य भोगता हूं। मेरी कामना देव को ही भोगती है और देव के आलिंगन की अभिलाषा रखकर चरणों का चुम्बन लेती है। शांति के संयोग से त्रिविध ताप नष्ट कर दिया। अब भेद-बुद्धि उत्पन्न होना पाप है। जिधर देखता हूँ, उधर एक हरि का रूप ही दीखता है। इसलिए अपने और पराये का भेद नष्ट हो गया।

✓ क्षण-क्षण साक्षी होकर मैं अपनी अन्तर्मुख-वृत्ति को सभालता हू ताकि प्रभु चरणों का मुझसे सबंध न टूटे। कितने ही भक्तों को अन्तराय आया, इसके भय से मैं जाग्रत हो गया।

हे देव, मैं तुम सरीखा शिव भी नहीं हू और अपने सरीखा जीव भी नहीं हूँ, यानी इन दोनों भावों से अलग हू।

एक भगवान की ही पहचान है, दूसरी भावनाएं नष्ट हो गईं। तुम्हारे अलावा अन्य नाम-रूपात्मक जगत मेरे लिए नष्ट हो गया।

मैं हाथ में विवेक की लाठी लेकर देह के पीछे लग गया। जिस तरह स्मशान में मुर्दे जलते हैं, उसी तरह मैंने उसे अपने ब्रह्मतेज से जला डाला।

हम श्री विट्ठल के प्रतापी वीर हैं। कलिकाल भी आये तो उसका सिर फोड़ देंगे। हम हमेशा हरिनाम-कीर्तन करते हैं। इस सुख के लिए हम बारम्बार जन्म लेंगे। हम मुक्ति की आशा नहीं करते।

जिससे मेरे चित्त मे विक्षेप पड़े, ऐसी संगति मैं नही करूंगा। विठ्ठल के अतिरिक्त जो शब्द है, उन्हे मैं कानो से नही सुनूगा। मैं जो कुछ बोलता हूं, दूसरो के समाधान के लिए बोलता हूं, लेकिन मेरा चित्त कहीं भी गया हुआ नही है। जिनके चित्त मे भगवत्प्रेम है, वे मुझे प्राणो से अधिक प्रिय है। देव और सन्त ही मेरे हित को जानते है। इसलिए दूसरो के बोलने की ओर मैं ध्यान नही देता।

देव के पास मुझे किस चीज़ की कमी है ? फिर मैं किसी और से क्या मागूं ? दूसरे की शसा न सुननेवाला हूँ न करनेवाला। सिवा भगवान के मुझे किसी चीज़ की इच्छा नही है। मोक्ष की न मैं आशा रखनेवाला हू, न उसके लिए प्रयास ही करनेवाला हूँ; न मैं ससार के आवागमन से डरता हू। मेरी आत्मा को सिवा परमात्मा के कुछ नही चाहिए।

पतिव्रता अपने पति के सिवा किसीकी प्रशंसा नही जानती। वह सर्व-भाव से मन में पति का ही ध्यान करती है। वैसे ही मेरा मन अनन्य हो गया है। सिवा भगवान के मुझे कुछ भी प्रिय नही है। सूर्य-विकासिनी कमलिनी चन्द्र के प्रकाश से नही खिलती। कोकिला वसन्त में ही गाती है। बालक माँ के आगे ही नाचता है। दूसरो के बोल उसे प्रिय नही लगते।

मैंने काम-क्रोध भगवान के समर्पण करके उसके चरणो का प्रेम धारण किया है। मेरा देहभाव चला गया। अब पीछे फिरकर कौन देखे ? ऋद्धि-सिद्धियो के सुखो को लात मार चका, तो फिर इस प्राकृत ससार-सुख को कौन मानता है ? मैं विठोबा का दास हूं। मैंने ब्रह्मांड को ग्रास बनाकर रख दिया है।

परमेश्वर हमारे हाथ लग गया है, इसलिए हम चिन्तारहित है। हमारा मन कही नहीं दौड़ता। सभी इद्रियां सतुष्ट है। कामवासना का पूर्णतया त्याग करके मैं विठोबा का नाम लेता हूँ।

देव की बातें मीठी लगती हैं, यह मेरा प्रत्यक्ष अनुभव है। मुझे सुख मिला है। इस सुख का वाणी से वर्णन नहीं हो सकता। अब मुझमें और देव में अन्तर नहीं दीखता। इस सुख को बनाये रखने का जी-जान से यत्न करूंगा।

प्रभु मेरी मा है; वह मेरी भूख-प्यास बिना कहे जानती है।

मैं किसीके अवगुण नहीं देखता। न किसीको पापी, पवित्र या विद्वान गिनता हूं। सब तेरे ही रूप हैं। इसलिए सबका भावसहित वन्दन करूंगा और सेवा करूंगा। मुझे केवल भक्ति की अभिलाषा है। तेरी खातिर मैं विष को अमृत मानकर पीऊंगा।

मुझे तेरे ज्ञान की इच्छा नहीं है, मुझे तो तेरा नाम लेना ही मीठा लगता है। हे माँ विठाई, मैंने अपना सारा भार तुझपर डाल दिया है। भक्ति या वैराग्य मेरी कुछ भी समझ में नहीं आता। मैं निर्लज्ज होकर तेरे सामने नाचूं, इसे छोड़ और कोई भाव नहीं है मेरे मन में।

हे वैष्णवजन, मैं तोतली वाणी से 'हरि-हरि' बोलता हूं, इसके अलावा मैं भिखारी और कुछ नहीं जानता। तुम भगवान के दास हो; मैं तुम्हारा उच्छिष्ट प्रसाद पाने की आशा करता हूं।

श्री हरिचरण कमलों के समान त्रिलोक में सुख नहीं है, इसीलिए मेरा मन उनमें स्थिर हो गया है। उन्हें मैंने अपनी आत्मा में धारण किया है और उनके नाम की इकहरी माला गले में डाल ली है। इससे मैं त्रिविध तापों से मुक्त होकर शांति पा गया हूं। पाण्डुरंग ने मेरी सब इच्छाएं पूर्ण कर दीं; मुझे सब सुख मिल गया।

मेरा संपूर्ण भार विट्ठल ने ले लिया है। अब अन्दर-बाहर उसीका रंग भरा हुआ है।

मुझे सब सुख विठोवा के चरणो से प्राप्त होते है, इसलिए और किसीकी इच्छा मेरे चित्त मे नही है। एक भगवान के सिवा मेरे चित्त मे और कोई नही। मुझे मुक्तितक की परवाह नही रही।

मैं एकान्त मे आनन्द से हरि का अनन्त प्रेमरस भोगू। यह प्रेमसुख गुह्य धन है। किसीकी बुरी नजर न लग जाय, इसलिए एकान्त मे इसका सेवन करूँ। हमारा यह प्रेम बड़ा नाजुक है। वचनो का भार नही सह सकता।

कोई अपना, कोई पराया! किन्हीका पालन करना, किन्हींसे झगडा करना! कोई अधिक कोई कम किस गुण से होता है? हे श्रीपति, तेरी माया मेरी समझ में नही आती! इसलिए मैं शपथपूर्वक कहता हूं कि मैं तेरा ही चिन्तन करता हूं।

सारी दुनिया हमको सताती है। इससे मन मे शका उठती है कि क्या नारायण मर गया? अगर हम लोगो से डरने लगें तो क्या उससे ईश्वर को शर्म नही आयगी?

सन्तों ने अपने चरण मेरे चित्त मे रख दिये हैं। अब मुझे काल नही बाध सकता। मेरी सारी विषमता शीतल हो गई। अब अन्दर-बाहर एक ईश्वर ही है, इसलिए मन भयरहित हो गया है। भय तो अब स्वप्न मे भी नही लगता।

हम विठोवा के लाड़ले है, इसलिए काल के भी काल है। अब सब जगह हमारा शासन है। अब ऐसी किसकी वैखरी वाणी है, जो हमारे सामने बोल सके? अब हमारे हाथ में हरिनाम का तीक्ष्ण बाण है।

मैं खाता-पीता, लेता-देता हूं, परन्तु सारा जमा-खर्च करता हूं तेरे ही नाम पर। अब सारा झंझट खत्म हो गया। अपना सारा भार तेरे सिर पर डालकर मैं निश्चिन्त हो गया हूं।

हमारे लिए सर्व-दिशा और सारा काल शुभ हो गया है। जो अशुभ था,

वह मंगल का भी मंगल हो गया है। सुख-दुःख से विरहीन नहीं रहा। अब आघात भी हितफल देता है। अब सारे जीव हमारे लिए अच्छे हो गए हैं।

सचिन्त ही भोगूं; आगे किसीका न रहूं। आत्मस्वरूप में बैठा रहूं, किसी-की चाकरी न करूं। आजतक विषय-काम के हाथ पड़ा रहा, कभी विश्रान्ति न पाई। अब पराधीनता समाप्त हो गई। अब से मैं अपनी सत्ता चलाऊं।

जो सुखराशि वैकुण्ठ मे भी नही मिलती, वे सर्व सुख-ऐश्वर्य मुझमे निरन्तर निवास करते है।

मुझसे प्रभु ने जैसा कुछ बुलवाया, वैसा मै बोला, वरना मेरी जाति और कुल के बारे में तो आप जानते ही है। हे सन्त मा-बाप, मुझ दीन पर क्रोध न करके मुझे मेरी बातो के लिए क्षमा करो। मेरे भावी अपराधो को मन मे न लाकर मुझे अपने चरणो के निकट जगह दो।

मै सन्तो के घर का दास बनकर उनके द्वार-आंगन मे लोटूंगा, क्योंकि उनकी चरण-रज के लगने से मेरे बयालीस कुलो का उद्धार होगा।

दुष्ट की संगति न हो। उससे भजन मे बाधा पडती है। हे विट्ठल, दुष्ट लोग तेरा निषेध करते है, मुझे यह बिल्कुल सहन नही होता। मै अकेला किस-किस से वाद-विवाद करूं ? तेरे गुण गाऊं या इन दुष्टो की खबर लूं ?

जिस पद मे राम का नाम नही है, उसे सुनने मे मुझे कष्ट होता है। तेरा कहलाकर अब दूसरे का कहलाने में मुझे लज्जा आती है। मुझे सर्व-भाव से एक तू ही प्रिय है।

मुझे सन्त-समागम और भगवान का नाम ही प्रिय है। मोक्ष की इच्छा यहा किसको है ? मै तो भगवान की सेवा ही मांगता हूं।

मैंने अपना सब भार भगवान पाडुरग पर छोड़ दिया है। वह मेरा सुख दु:ख देखकर जिसमें अतिहित देखते है, करते है।

मै अपने चित्त को मोडकर धीरे-धीरे एक हित-मार्ग पर लाता हूँ, परन्तु पडित दोष निकालते है। इससे शका के आघात पहुंचते है। मै ससार से डरता हूँ, एक भाव से भगवान के निकट आना चाहता हू।

अपनी देहतक की हमने उपेक्षा कर दी है। अव कहां जाकर किसको हित की वातें सुनाऊं ? अपना-अपना ससार चलाने मे कौन दक्ष नही है ? हमने सासारिक विचारो का वमन कर दिया है। जव मै अपनी जानतक की लालसा नही रखता, तो औरो की संभाल कैसे करूं ? जिस विपय मे मुझे रस नही रहा, उसमे दूसरे की प्रसन्नता के लिए क्यो लिथडू ?

इसकी मुझे स्पप्ट प्रतीति होगई है कि तारनेवाला और मारनेवाला तू ही है।

मेरा स्वरूप मेरे हाथ आ गया। अव सवकुछ अच्छा है। अव द्वैत किस-लिए ? वह तो अन्दर की गन्दगी है।

मै भी भगवान हूं, आप भी भगवान हैं। परन्तु दोनों में एक-दूसरे के प्रति भीति अधिक है। जो कोई भक्ति मे दृढ है, उसके पीछे-पीछे भगवान दौडते हैं।

गगा के प्रवाह की तरह मै सहज वोलता जाता हूं। भाग्यवान इसका सेवन करेगे। यहा सव अधिकारी कहा है ?

प्रपचों की यह खटपट कव पूरी होगी ? इस जाल मे छूटकर मैं कव विश्रांति पाऊंगा ? इसके दु:ख से मेरे प्राण निकलने-से लगते हैं। इम प्रपच्च के स्वरूप की प्रतीति न होने से लोग उसमे सुखी हैं। भोगो से मेरा मन शुरू से ही त्रस्त है। सलिए वह कही छिपने का ठिकाना ढूंढ रहा है।

सारे संसार से अलग रहकर मैं दुनिया का कौतुक देखूँगा। संसार में भूले हुओं की आंखों में धुन्ध छा गई है। डूबे हुओं में से कोई सिर ऊपर नहीं निकाल सकता।

निश्चय मानो कि ये मेरे बोल नहीं हैं। मैं तो भगवान का मजदूर हूं। मेरी वाणी नामघोष से मधुर हो गई है और उससे मेरा मानस निश्चिन्त होकर आनन्दभरित हो गया है। अब संसार का भय नष्ट हो गया है। अब मैं चिदाकाश का हो गया हूं। यह सब सन्तों का प्रसाद है। उससे भगवान का आनन्द प्राप्त हुआ है।

पुत्र, पत्नी, बन्धु, आदि शरीर के संबंधी, धन के लोभी, मायावी लोग, मित्र, रिश्तेदार, स्वजनादि, नाना प्रकार के घातक कर्मों में लपेटते हैं। ये मुझे डुबाने की घात में हैं। इनसे मेरी रक्षा करो। हे प्रभो, मैं तुम्हारी शरण आया हूं।

जबतक हीरा नहीं मिला, तबतक काच की शोभा, जबतक सूर्योदय नहीं हुआ, तभीतक दीपक की शोभा। इसी तरह जबतक तुकाराम से भेंट नहीं हुई है, तभीतक अन्य मतों की बातें चलेंगी।

मैंने अपना सब भार उनके सिर पर डाल दिया है, इसलिए मेरी सारी चिन्ता खतम हो गई।

जिनके चित्त शुद्ध हैं, वे मुझे अत्यन्त प्रिय हैं।

मेरे अहंकार पर पत्थर पड़े। दंभ से प्राप्त हुए यश में आग लगे।

जो मेरे अनुभव में आया है, उसे ही मैं लोगों को देता हूं।

अन्तर की ज्योति की दीप्ति जो पहले आच्छादित थी, प्रकाशित हो गई। उससे इतना आनन्द हुआ है कि ब्रह्माण्ड में भी नहीं समाता। उससे

मुझे जो सुख हुआ, उसके लिए कोई उपमा नही है।

धन-मान प्रारब्ध से मिलता है। प्रारब्ध से ही सुख-दुःख होता है। प्रारब्ध से ही पेट भरता है। इसलिए मैं व्यर्थ किसीको बुरा-भला नही कहता।

जगत् के साथ मुझे क्या लेना-देना? मेरा सारा बोझ पाडुरग पर है। विठोबा का नामकीर्तन करना ही मेरा कुल-साधन है।

सुख का व्यापार करने से मुझे सुख की इतनी कमाई हो गई कि आगे-पीछे और सब दिशाओ में आनन्द-ही-आनन्द व्याप्त हो गया। अब तो मुझे देव की ही सोहबत और उसकी ही पंगत मे बैठना है। समर्थ देव के घर मे सब प्रकार की संपत्ति भरी पडी है। वहा कभी किसी चीज़ की कमी नही पड़ती। देव के घर में अपार लाभ का वास होता है।

दस मे से एक आदमी अच्छा है, ऐसा कहे तो अन्य लोगो की निन्दा करने का दोष सहज ही लगता है। इसलिए कौन अच्छा और कौन बुरा इसका विचार करने की वृत्ति मुझमे है ही नही। सब विषयो में हम अपने मुह पर ताला मार-कर वाणी का उपयोग केवल हरिनाम स्मरण में ही करे।

मै हरिनाम का सिक्का लिये हुए हूं। उसकी सहायता से मै कलिकाल को धक्का मारकर पीछे हटा सकता हूं। इस सिक्के को यो ही न समझना। यह जिसका है उसके समान है और उसके न मानने से नाक-कान कट जाते हैं। मैं नाम-रूपी सिक्के से निजानन्द के सिहासन पर आरूढ हुआ हू।

भूतमात्र मे देवता का वास है, यह समझकर मैं सब लोगो को आलिंगन देता हूं। परन्तु वैसा करते समय यह व्यक्ति पुरुष है या स्त्री, इसका विचार मन में नहीं लाता। मेरे मन के भाव को भगवान जानते हैं।

दसो दिशाओ मे भटकनेवाला मेरापन जबसे तेरे पास लौट आया है, तबसे उसे परम तृप्ति हो गई है।

फिजूल की बातें कहने में वाणी का व्यय कौन करे? अब तो मुझे वही करना है जिससे भगवान् को हृदय में धारण कर सकूं। ईश-चिन्तन का उपदेश देने से मैं पागल गिना जाता हूं।

लोगों की निन्दा-स्तुति को सुनकर मैं बहरे की तरह रहूंगा, जैसे स्वप्न-सृष्टि जगने पर मिथ्या हो जाती है, उसी प्रकार इस प्रपंच को झूठा मानकर मैं अन्धे की तरह रहूंगा।

मैं प्रभु के चरणों को कभी नहीं बिसारने का। इतना किया तो मेरी सब चिन्ताओं का भार भगवान अपना समझकर अपने ऊपर ले लेंगे। प्रभु-चरण रूपी सच्ची अमृत-संजीवनी मेरे हृदय में हमेशा रहती है।

मेरा यह अनुभव आप देखिये कि मैंने ईश्वर को कैसे अपना बना लिया। ज्यों ही क्षुद्र संसार का त्याग किया कि भगवान अपने हो जाते हैं। मेरे धैर्य रखने से देव इतना मेरे पास-पास रहता है, मानो मुझसे चिपट गया हो।

'इस शरीर से मैं पृथक् हूं', इस बात को भूलकर मैंने अपना गला मूर्खतावश अपने ही हाथ से दबा डाला है—अपने स्वरूप को देह-बुद्धि से ढंक रखा है। 'यह मेरा घर', 'यह मेरा लड़का' ऐसा मैंने माना ही कैसे?

मुझे समस्त जगत् देवरूप दीखता है। इससे मेरी गुण-दोष देखने की वृत्ति क्षीण हो गई है। यह बड़ा अच्छा हुआ है—बड़ा ही अच्छा हुआ है। आरसी में भले ही दूसरा प्रतिबिम्ब दिखाई देता हो, परन्तु तात्त्विक दृष्टि से देखनेवाले को बिम्ब और प्रतिबिम्ब एक-सा-एक ही है। नदी का समुद्र के साथ समागम होने पर नदी का नदीपन खो जाता है और वह समुद्र ही हो जाती है।

मुझे जो-कुछ मिला है, मेरे संचित कर्मों का फल है। मेरा अन्तःकरण प्रेम-भक्ति के माधुर्य से सराबोर हो गया है जिससे मैं आनन्द में ही रहता

हूँ। मेरा जीवन आनन्द से भरपूर हो गया है। भगवान ने मेरे अज्ञान का पर्दा दूर कर दिया है, जिससे मेरी दृष्टि में सारा जगत् ब्रह्मानन्द से परिपूर्ण हो गया है। ईश्वर ने मेरी कामनाएं दूर कर दी है, इसलिए मेरी उसके प्रति बड़ी प्रीति है।

जो त्रिविध-ताप-ज्वर से पीडित है, उन्हें मैं नारायणरूपी औषध देता हूँ।

जो देव सर्व-व्यापक है, वह मेरे हृदय में न हो, यह कैसे हो सकता है?

✓ देह-विषयक मैंने जो-जो आशाएं बांधी, उनसे मुझे भारी क्लेश हुआ।

अमुक मनुष्य का समाधान करने से मुझे कोई प्रयोजन नही है। इससे स्वय को और दूसरे को दु:ख होता है।

पहले मेरे मन के अन्दर नाना प्रकार की आशाएं, और तत्सबधी असख्य चिन्ताएं थी, परन्तु उन दोनों का अब मैंने नाश कर डाला है।

यदि ईश्वर-भक्ति का यह उपाय पहले से ही मैं जान गया होता, तो इतने कालतक गर्भवास (जन्म-मरण) का दु:ख क्यो भोगता? स्त्री पुत्र के कष्ट झेल-झेलकर नाहक क्यो मरता?

मुझे तो एक शुद्ध भाव ही मान्य है। उसके अतिरिक्त अन्य किसी ज्ञान-चातुर्य की मुझे कोई आवश्यकता नही है।

यह सब जगत् मुझे भगवान्-रूप दीखता है। इससे मुझे जो आनन्द होता है, उससे मेरा संपूर्ण शरीर शीतल हो जाता है। इसलिए मैं अपने अटपटे परन्तु प्रेमभरे शब्दो से उस देव की करुणा की भिक्षा मांग रहा हूं और ऐसा करने से मेरे मन को बड़ा सुख होता है। मुझमे जो भेदात्मक भावना थी, उसका क्षय हो गया है, जिससे मुझमें दु:ख की तो छायातक नही रही। मैं तो तेरे

रंग में रंग गया हूँ, इससे मेरा जीव अत्यंत सुखी हो गया है।

मैं ऐसे देव का दास हूँ कि जिसे कोई वासना नहीं है और जो सुख-दुःख आदि द्वंद्वों से रहित है। मेरे योग-क्षेम को निभाने की पूर्ण चिन्ता उसे है। मेरा हितकर्ता भी वही है। मैं उसके गीत मधुर स्वर से गाऊँगा और अन्य किसी विचार को चित्त में प्रविष्ट न होने दूँगा।

✓ लोक-सुख नाशवन्त और बाह्य है। उसे लेकर मैं क्या करूँगा?

देव ने मुझे अमृत-पद का दान दिया है। इस उपकार के बदले मैंने उसे अपना कंठहार बना लिया है। 'यह मेरा, यह तेरा' मेरे इस द्वैत को देव ने क्षय कर डाला।

✓ मुझे किसीसे कुछ नहीं मांगना। मांगने योग्य एक देव है और वह तो मेरे पास ही है। मैं उससे इन्द्र का पद मांग लूँ मगर उसको लेकर क्या करूँगा? वह शाश्वत तो है नहीं। वैकुण्ठ-पद मांग लूँ, उसमें भी कुछ मजा नहीं। वह एकदेशीय और दरिद्री है। चिरंजीव आयुष मांग लूँ? जीव अमर तो है ही, फिर चिरंजीवपने में क्या ज्यादा है? जो एकत्व किसीसे किसी प्रकार कभी नष्ट हो ही नहीं सकता, ऐसे आत्मैक्यभाव को ही मैं मांगता हूँ।

मेरे घर में शब्द-रूपी रत्नों का खजाना है। शब्द ही मेरे जीने का एक साधन है और लोगों को मैं शब्द का ही दान देता हूँ। देखो, देखो, यह शब्द ही देव है और शब्द-गौरव से ही मैं उसका पूजन करता हूँ।

जब मैं अपना संसार छोड़ बैठा हूँ, तब मुझे लोकाचार की क्या दरकार है? देव के सिवा मेरा कोई इष्ट-मित्र, स्नेही-स्वजन, सगा-प्यारा है ही नहीं। ✓ अपने शरीर के संपूर्ण संबंधियों का मैंने त्याग कर दिया है। नाना प्रकार की प्रपंचपूर्ण उपाधियों की बातें सुनने से मेरे कान उकता गये हैं। प्रभु, दया करके मुझे विषय-वासना के सुख-दुःख से दूर रखना।

मैं हर समय हरिनाम स्मरण करता रहता हू, इससे मेरा मन समाहित अवस्था मे रहता है और उसीका नाम है समाधि। मैं कही गुफा आदि में भटकने नही जानेवाला। मैं तो वही रहूगा जहां भक्तो की मंडली जमी होगी। नाम-स्मरण के सिवा उपवास, व्रत, आदि मैं कभी नही करनेवाला।

जिस घड़ी मैंने अपना जीवभाव तुझे अर्पण कर दिया, उसी घडी उसका ऐसा क्षय होगया कि वह ढूढे भी नही मिलता! हे अनन्त! अव तो मैं जो-कुछ करता हूँ, तेरी ही सत्ता द्वारा करता हूँ।

देव का और मेरा मूल से ही स्वरूपैक्य है। झूठे प्रपंच के मोह के कारण देव से मिलने में वड़ा विलम्व हो गया।

जिनकी वृत्तियां स्थिर हो गई हो, उनको मैं अपना मित्र मानता हूं।

स्वामी की सत्ता द्वारा सम्पूर्ण मर्म पहले से हस्तगत हो जाने पर वार-वार विशेष लाभो की प्राप्ति होती रहती है। मैं भावहीन सयाना नही हूँ। मैंने अपने स्वामी के मन के साथ अपना मन मिला लिया है, जिससे मैं उसके अन्त.करण की वाते जान जाता हूं। मैं परिश्रम-पूर्वक अपने मन को प्रत्येक क्षण जाग्रतावस्था मे रखता हूं। अव मैं देव से तनिक भी विलग नही रहने वाला।

चित्तवृत्ति को एकाग्र करके मैं हर ग्रास और हर घूट पर देव का स्मरण करता हुआ खाता-पीता हूं। मैं चित्त को जाग्रत रखता हू, द्वैतभाव के घुस आने की मुझे वडी आशंका रहती है।

मेरी इच्छा थी कि लोगो के ऊपर अपने वडप्पन की छाप विठाकर खूब मान प्रतिष्ठा पाऊ, इसी कारण देव मुझसे विलग हो गया है।

अव अहंकार से मेरा संवंध नहीं रहा, इससे तमाम प्रपच का निरसन हो गया है।

मेरी अविद्या की रात्रि का अन्त आ गया है। अब देहबुद्धि-रूपी मोहनिद्रा को भूल गया हूं। मेरा निवास नारायण के स्वरूप के अन्दर हो गया। तबसे मुझे आनन्द-ही-आनन्द हो गया है। तमाम जगत में सब जगह सब-कुछ मेरे ही स्वरूप से परिपूर्ण हो गया है। इससे मैं यह समझ गया हूं कि मेरा यह ज्ञान कितना मिथ्या था कि 'मैं यह देह हूं', और 'इस देह के संबंधी मेरे संबंधी हैं।' अब तो देव और मैं दोनों एकरूप हो गए हैं।

मैंने बहुत-से मत-मतान्तरों का त्याग किया है और जिससे द्वारा अपना कार्य हो जाय उसे ही पकड़कर बैठा हुआ हूं।

देह तो कर्माधीन है। उसके योग-क्षेम को अपने सिर पर लेकर मैं क्यों, वृथा दुःख करूं? शरीर के संबंधियों को अपने संबंधी मान बैठने की दुर्भावना से मैं आज तक बड़े संकट उठाता आया हूं।

मेरा मन निश्चल और स्थिर हो गया है, जिससे मुझे बांधकर रखनेवाली आशा के बंधन टूट गए हैं। हरि-प्रेम-प्रवाह से मुझमें आनन्द की बाढ़ आ गई है।

मैं अपने चित्त में एकनिष्ठ भाव धारण करके भूत-मात्र के प्रति दया, क्षमा और शान्ति धारण करके रहता हूं।

लक्ष्मीपति सरीखा दातार मुझे मिला है, फिर मुझे मांगने के लिए रहा क्या?

भगवान् के चरणों के निकट [illegible] दान की है। उनके आगे ऋद्धि और सिद्धि दासी बनी खड़ी रहती हैं। परन्तु उस नारायण-सुख की ओर निहार कौन करता है? मैं पाप-पुण्य दोनों को पार कर गया हूं।

ऐसी मधुर प्रेम-भक्ति का आनन्द-भोग छोड़ मुझे [illegible] करने से

क्या काम ? नारायण स्वयं भक्तो का दास है, फिर उससे मिलना क्या मुश्किल है ? हे देव, मुझे सायुज्य मुक्ति नही चाहिए। मैं तो सन्तो के समागम मे अधिक आनन्दपूर्वक रहूंगा।

वैकुठ के दिव्यभोग मुझे इसी लोक मे भोगने मिले, ऐसा उच्च प्रेम मैं मांगता हूं।

मान-अमान, भाव-अभाव आदि सव द्वन्द्व टल गए और मेरी देह ही भगवान-स्वरूप वन गई है। ऐसी अवस्थावाले भाग्यवान् हैं। जीवन का यही हेतु होना चाहिए।

भूतमात्र मे भगवान का वास है, ऐसा पूर्ण अनुभवयुक्त वैराग्य मुझे प्राप्त हुआ है।

मै जिसको चाहूंगा, मान दूगा, मेरी मर्जी न होगी तो न दूगा। वैसे, राजा और रक मुझे समान है। जव मै अपनी देह तक के प्रति उदासीन भाव रखता हूं, तव दूसरे की आंख की शरम रखने का मुझे क्या कारण है ? तव तो मै अपनी सहज लीला के अनुसार खेल खेल रहा हूं। मै सुख और दुख से परे हो गया हूं।

अपने कुटुम्व के भरण-पोषण का भार मैने तेरे ऊपर डाल दिया है। मै तो एक निमित्त-मात्र हू। मै व्यवहार का कामकाज करता हू, परन्तु हृदय मे हर समय तेरा नाम धारण किये रहता हूं।

स्वरूप-अज्ञान-रूपी अधेरी रात्रि को मै खा गया हू, इसलिए अव काल भी मुझे नही पकड़ सकता। स्वरूप के ऊपर पर्दे की तरह पड़ी हुई माया ने ही इस प्रपच का तमाशा खड़ा कर रखा है। उस माया ने प्रपच का वेश धारण करके जो भाव प्रकट किया वही अव नही रहने पाया, इसलिए देहादिक प्रपच के घर में मुझे फिर से घुसना पड़े, ऐसी परिस्थिति ही नही रही।

इसका कारण यह है कि मैंने तमाम उपाधियां श्रीहरि के पास भेज दी हैं। अब मैं किसीके हाथ नहीं आनेवाला। अब मेरी ऐसी अचिन्त्य स्थिति हो गई है कि उसका वर्णन नहीं हो सकता।

मैं अणु-रेणु से भी सूक्ष्म हूँ और आकाश जितना बड़ा हूं। मैंने भ्रमजन्य देहादि प्रपंच के आकार का लय कर दिया है। ज्ञेय, ज्ञाता और ज्ञान की त्रिपुटी का निरास करके मैंने आत्मबोध-रूपी दीपक अपनी देह के अन्दर प्रकटाया है। अब तो मैं अपना अवशिष्ट प्रारब्ध भोगने भर के लिए और लोकोपकार के लिए ही जीता हूं।

मान, प्रतिष्ठा और दम्भ मुझे सूअर की विष्ठा के समान लगता है।

मृत्यु आने से पहले ही मैं तो मर चुका हूं। मेरे मन में जो आता है सो करता रहता हूं। तुम मेरे नये-नये खेल देखा करो, मेरे साथ विवाद करने का व्यर्थ श्रम न लो।

अब किसीको मुझसे कोई आशा नहीं रखनी चाहिए। मैं तो भगवान के लिए दीवाना बन गया हूं।

संग्रह, त्याग पर मैंने बड़ी सिरपच्ची की। उससे दुःख घटने के बदले बढ़ा। अब तो मैं अनन्त के कदमों के आगे पड़ा रहता हूं। अब मुझे जन्म-मरण के जंजाल में फंसने का कोई कारण नहीं रहा।

एकविध भाव से एकान्त में रहने से जो सुख होता है, वह मुझे प्राप्त हो गया है।

अब मैं सत्त्व, रज और तम, इन तीनों गुणों को त्याग करके निर्गुण देव सा बन गया हूं।

मैं क्या गाऊं? मेरा गाना सुननेवाला तो कोई है नहीं। जहां जाता हूं, सारी दुनिया को विषय-तृष्णा से भान भूली हुई पाता हूं। इसलिए अब

मैं अपने आत्माराम के साथ क्रीडा करूंगा और जैसी बन पडे वैसी बात करके छूटूंगा।

जो निष्काम चित्त से राम-भजन करता है, उसका मैं दास हू।

जो तृष्णा के आसन पर बैठे है, उनका कुछ नही बचनेवाला, सब लुट जायगा। इसलिए मैं दुनिया से मुह मोडकर राम के रास्ते लगा।

संसारी लोगो को पैसा अपने जीवन से भी अधिक प्यारा लगता है, परन्तु मुझे वह पैसा पत्थर से भी तुच्छ लगता है। सगे-सबधी, इष्ट-मित्र, सज्जन और वन ये सब मुझे एक सरीखे है।

श्रीहरि का कीर्त्तन करके मैं शुद्ध हो गया हू, इसलिए मेरे लिए तो सारा त्रैलोक्य भी शुद्ध हो गया है। अब से मैं परब्रह्मरूपी नगर में स्थायी रूप से रहता हू। वहा भेदात्मक प्रपचरूपी अपवित्रता पर मेरी निगाह नही पड़ती। अब मैं एकान्त मे परब्रह्मरस का पान करता रहता हू।

मैं जन्म-मृत्यु के चक्कर में फसकर बहुत थक गया था, परन्तु राम-स्मरण से वह थकान दूर हो गई और मेरी काया शीतल हो गई।

मेरी कुल पूजी एक भगवान है। ये शब्द भी मेरे मुख से उन्हीने बुलवाये है।

समस्त व्यसनो को नष्ट करके और सगमात्र का त्याग करके मैं बिलकुल नि.संग भाव से नाचनेवाला नट बन गया हूँ। इससे मैं सर्वत्र समान रूप से देव को ही देखता हू सर्वत्र मैं ही व्याप्त होगया हू। अब किसी और को नही आने देनेवाला।

द्रव्य की और कुटुम्बियों की अब मुझे कोई अभिलाषा नहीं है। मुझे अपनी जान की परवाह नही। शरीर तक को वस्त्र से ढकने की क्या

आवश्यकता है ? अब मुझे लाज-शर्म भी किसकी रखनी है ? क्योंकि चारों तरफ एक देव के सिवा मुझे और कोई नहीं दिखाई देता ।

शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के क्षण मेरे लिए शुभ ही हो गए हैं; क्योंकि मुझे विश्वास हो गया है कि देव मुझपर कृपा करेंगे ही । इसलिए अपने सम्पूर्ण व्यापारों में मैं आनन्द का ही व्यापार करता रहता हूँ । इसके सिवा और कुछ मैं जानता तक नहीं हूं । ऐसा होने से मेरा चित्त समाहित रहता है । इसलिए लाभ, हानि, सुख-दुःख के धक्के मेरे अन्तःकरण को नहीं लगते । इस प्रकार मैं संसार में रहते हुए भी उसमें लिप्त नहीं होता । प्रापंचिक विस्तार को मैंने अपने मन से दूर कर रखा है और मेरे अन्तःकरण की प्रीति तो मेरे जीवनाधार तुल्य हरि के नाम पर स्थिर हो गई है । इससे मेरे मन पर होनेवाले तमाम आघातों-प्रतिघातों का शमन हो गया है ।

: २ :

नाम-महिमा

विदुर के यहा साग-पात खाने से क्या देव भूखा रह गया था ? कुब्जा दासी का वदन तीन जगह से टेढा था। वह कुरूपता की राशि थी। फिर भी भगवान ने उसीका स्वीकार किया था न ?

साधु-सन्तो का नाम लेने से पुण्य होता है। इसीलिए मेरी वाचा उनका निरन्तर नाम लेती है। इससे महालाभ मुफ्त मे मिलता है। सन्तो के चरणों मे भावलीन रहना ही विश्रांति है। सन्तो के जप से सब पाप कट जाते है।

कुमुदिनी अपनी सुगंध को नही जानती, उसका भोग तो भ्रमर ही करता है। इसी प्रकार हे देव ! अपने नाम की मिठास की आपको जानकारी नही है, उसका प्रेम-सुख तो हम ही जानते है।

आपके चरणों के सुख के सबंध मे क्या कहू, आपको उसका अनुभव नही है। कितना ही वर्णन करूं, आपको सत्य नही लगेगा, क्योकि अमृत के गुण अमृत नही जानता।

हरि का नाम सार का भी सार है। इससे यम भी शरणागत होकर किंकर वन जाता है। नाम उत्तम से भी उत्तम है। इसलिए वाणी से पुरुषोत्तम बोलो। क्या कहूं, भगवान् के चरण ही तारक है।

अन्तकाल में भी जिसके मुह मे देव का नाम आ गया, उसके सुख का पार नही है।

मुह से भगवान का नाम लू, यही मेरा नियम-धर्म है; सन्तों के पैरो पड़ना, यही मेरी उपासना है।

भगवान का नाम ही अच्छा है, वही सत्य है। इसीसे बधन टूटते है; इसीसे दोनो लोको मे कीर्ति होती है। जिसमें हरि की श्रद्धा है, उसे हरि की प्राप्ति तत्काल होती है। भोला भक्त कलिकाल को जीतना जानता है।

देव-प्रेम मन में न हो तो न सही, मगर वाणी में उसका नाम हमेशा रहने दे। उसके चिन्तन मे और नाम-सकीर्तन में जीवन बीते। चाहे तान दम से ही क्यो न ले, मगर ले, कभी-न-कभी भगवान सुन लेगे ही।

भगवान का नाम लेने से भवरोग का निरसन होता है, सचित क्रियमाण भोग का नाश होता है। इसे उच्चारने से जन्म-मरण का नाश होता है, पाप नजदीक नही आ सकता, त्रिविध-ताप जाता रहता है, माया दासी हो जाती है और पैरो पड़ने लगती है।

हे प्रभो, अगर मै पतित न होता तो तू पावन किसको करता? इसलिए पहले मेरा नाम है, बाद मे तेरा। अगर लोहा न होता तो पारस पत्थर अन्य पत्थरो जैसा होता। भगवान कल्पना से कल्पतरु की कल्पित वस्तु देता है।

मुझे यह निश्चय हो गया है कि मै इस भवसागर से पार हो गया हू। ससार को छोडकर तेरा नाम कठ मे धारण किया है। अब एक हरि को छोडकर और कुछ शेष नही बचा।

भगवानरूपी मा याद करने ही दौड़ती आकर याद करनेवाले को प्यार करती है। हरि के नाम गाने से सायुज्यता (मुक्ति) मिलती है।

यहा सब सुखो का आधार नाम है। जब द्वैत चला जाता है तभी ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है और शरीर भी ब्रह्मरूप हो जाता है। आखें खोलकर देखोगे तो सब सुख नाम मे ही दिखाई देगे।

भगवान का नाम ही सर्वधर्म है। इसके अलावा मै दूसरा साधन नहीं जानता।

द्रव्य को मै गन्दी चीज़ मानता हूं। कारण, उसके पीछे काल लगता है। नारायण के नाम का ही जीवन मैंने धारण कर लिया है। मेरे पास जो याचक आयेंगे, उन्हे इसीका दान देने की क़ोशिश करूंगा।

सारभूत मर्म राम है, इसलिए हम भाविक भक्तो ने उसे हृदय मे रख लिया है। लोहा, चकमक, पत्थर और रुई, ये अग्नि को सिद्ध करने के लिए ही रखने पड़ते है, वरना उनका बोझा कौन उठाने दे !

भगवान जो-कुछ करते है, मेरे भले के लिए करते है, यह अनुभव मेरे चित्त को पूरी तरह हो गया है। मेरे जीव को अपार आनन्द हो गया, क्योकि परमानन्द ने मेरा सम्पूर्ण भार ले लिया। उन्हे अपने नाम का अभिमान है, इसलिए वे शरणागत को अपने बल से तारते है।

नाम से ही सिद्धि होगी, मगर वह नाम दोषरहित बुद्धि से लेना चाहिए।

राम ही राज्य है, राम ही प्रजा है, राम ही लोकपाल है। दूसरा कोई नही है। स्वामी-सेवक का भाव नष्ट हो गया है।

जहा दया, क्षमा, शाति है, वहां देव का वास है। देव उसके घर दौड़ता आ जाकर उसके हृदय मे वास करता है। देव का नाम लेने से उसकी पूजा व प्राप्ति हो जाती है।

जिसकी जीभ पर भगवान का नाम नही आता, उसकी बोली मुझे अच्छी नही लगती। जो भगवान से सब प्रकार से विमुख है, उसे मैं अपना कभी नही कहता, वह मेरा शत्रु है। जिसको भगवान का नाम प्रिय नही है, वह अधम है।

जिस क्षण देव के चरणों में मेरी बुद्धि स्थिर हुई, उसी क्षण मेरे मनोरथ पूर्ण हो गए। जीव समाधान पाकर निश्चल हो गया, और आकुलता की मुझे याद तक न रही। भगवान के प्रेमसुख से मन के सुखी होने के कारण त्रिविध-ताप का दहन हो गया। महालाभ भगवान का वाणी पर वास हो गया और हृदय में भी उनका अखंड असंग हो गया। आत्मा के परमात्मा पद पाने से विश्व विश्वंभर में लय हो गया।

राम के दो अक्षरों को छोड़कर यह सब जंजाल किसलिए करना है?

आकस्मिक नामोच्चारणक से सद्गति मिलती है, वहाँ नाम सतत लेने से भगवान निकट आकर खड़े हो जाते हैं, और राम-नाम-स्मरण भक्ति-भावपूर्वक किया तो उसकी स्थिति तो कौन जान सकता है?

नाम मीठा है। उसीसे सारी इच्छाएं पूर्ण होती हैं। अन्य रसों के सेवन से मृत्यु निश्चित आ जाती है। परन्तु इस नाम-रस से जन्म-मृत्यु-चक्र समाप्त हो जाता है।

नाम लेनेवालों के संसार-क्रम का निवारण हो गया। जिन्होंने रामनाम पर विश्वास रखा उन्होंने भवपाश तोड़ डाले। भाविकों ने नाम संकीर्तन से कलिकाल को लुभाकर अपने वश में कर लिया है।

प्रभु के भक्त चिन्ता-आशा-रहित होने के कारण सदा निर्भय रहते हैं।

यह बात बहुतों ने सिद्ध कर दी है कि मुख में नाम रखने से हाथ में मोक्ष आजाता है। उसके लिए न भस्म-दंड-लकड़ी चाहिए, न तीर्थ-भ्रमण। नाम चिन्तन हो, तो मुक्ति-प्राप्ति में कोई बाधा नहीं आती।

जिनके मुख में हरि का नाम नहीं है, उनके मुखों में आग लगे। [illegible] कितनी भी विपत्ति पड़े, परन्तु चित्त से राम रहे। हरि-चिन्तन ही धन,

सम्पत्ति, उत्तम कुल समूल जल जाय। हे प्रभो, मुझे वह स्थिति दो, जिसमे तुम्हारी सेवा होती रहे।

✓ समुद्र-वेष्टित पृथ्वी का दान भी नाम-चिंतन की बराबरी नही कर सकता। इसलिए आलस न करो। रात-दिन रामनाम लो। तमाम वेद-शास्त्रो का पठन भी गोविंद के नाम की तुलना मे कुछ नही है। प्रयाग, काशी, आदि समस्त तीर्थों की यात्रा भी रामनाम के सामने कुछ नही है। विठोबा का नाम ही सार है।

कविता करने से कोई सन्त नही हो जाता। न कोई सन्त का संबंधी होने से सन्त होता है। सन्त का वेष धारण करने से या सन्त उपनाम रख लेने से भी कोई सन्त नही हो जाता। शत्रु के प्रहारो को जो सहन करता है, वही शूर सन्त है। हाथ मे इकतारा लेकर गुदड़ी ओढने से कोई सन्त नही ोता। कीर्तन करने से सन्त नही होता। पुराणो के अर्थ बताने से सन्त नही होता, वेद-पठन से सन्त नही होता, कर्मों के आचरण से सन्त नही होता; तप-तीर्थाटन करने से सन्त नही होता; वन-सेवन से सन्त नही होता; माला-मुद्रा से सन्त नही होता; भस्म रमाने से सन्त नही होता। जबतक देह-बुद्धि, देहात्मभाव, नष्ट नही हुआ, तबतक उपर्युक्त सब लोग संसारी ही है।

जो कोई हरि का नाम लेता है, उसके पीछे-पीछे प्रभु का प्रेम ौडता है।

हरि का नाम लेते ही संसार-बंधन टूटने लगते है। नाम के सिवा हरि-प्राप्ति का और कोई उपाय नही है। मै सबसे पुकारकर कहता हूं, नाम लिये बिना न रहो।

हरि का नाम लेते ही पापों का नाश हो जाता है और उत्तम गति मिलती है। राम के नाम से कलिकाल थर-थर कापता है। रामनाम लेने से मुक्ति मिलती है। सीसे आवागमन मिटता है और सारे ससार-बंधन टूट जाते है। किसी और तप-अनुष्ठान की आवश्यकता नही है। भक्ति-भावसहित हरि का नाम जपो तो काल-यम शरण आ जायगा।

प्रेम से प्रभु के स्वरूप का स्मरण करके उसमें जीव को निमग्न कर देना ही प्रभु-मिलाप है। नाम-स्मरण से प्रभु का रूप ही अपने पास आ जाता है। प्रभु का नाम बार-बार लेने से शरीर की सम्पूर्ण नसें आनन्द से शान्त हो जाती है।

'राम' नाम के स्मरण करने मात्र से ही काम और क्रोध भस्म हो जाते हैं और अभिमान निर्वासित हो जाता है। रामनाम से ही सब कर्मों का और संसार का बन्धन टूट जाता है और स्वप्न में भी हमें कोई तकलीफ नहीं होती। जन्म-मरण का दुःख नहीं सहना पड़ता, दरिद्रता कभी भी अनुभव नहीं होती। रामनाम के उच्चारण-मात्र से सर्वधर्म की प्राप्ति हो जाती है और अज्ञाना-न्धकार का पटल एक क्षण में दूर हो जाता है। रामनाम लेने से भव-समुद्र सहज में तरा जा सकता है, इसमें तनिक भी शंका नहीं।

नारायण का नाम एक ऐसी औषध है, जिससे भवरोग का नाश हो जाता है। इससे देव की कृपा होती है और शीघ्र ही कैवल्यपद की प्राप्ति हो जाती है।

हर समय विट्ठल भगवान के नाम का जप करना ही तमाम गुणों का सार है। यही साधन तमाम साधनों का मूल है। यह याद रखना कि जबतक तनिक भी देहाभिमान और देह का विचार है, तबतक नारायण पास नहीं आ सकते।

देव का स्मरण करने से मन का तमाम भय टल जाता है और चिन्ता करने का कोई कारण नहीं रहता। 'कृष्ण' का उच्चारण प्रेमसहित करने से तन मन शान्त हो जाता है।

हर समय मुँह से नामोच्चार करने की भक्ति चारों प्रकार की मुक्तियों से श्रेष्ठ है। इसी नाम की सहायता से मैं ब्रह्म के साथ स्तरों में ऊपर आया और भक्त से भगवान बन गया।

यदि रामनाम का रस लग जाय तो तुम्हारी देह भी रामरूप ही बन जाय। फिर तुममें और देव में कोई अन्तर नही रहनेवाला। तुम्हारा मन आनन्दस्वरूप हो जाय और तुम्हारी आंखो से प्रेमाश्रु वहने लगें।

चारो वेद पढ़ चुकने के वाद जो हरिगुण गाने बैठे तो जानना कि वह वेद का अर्थ ठीक समझा है। योग, यज्ञ, दान, आदि चाहे जो करो, परन्तु उन कर्मों को करते-करते यदि कण्ठ में हरि का नाम रमा रहता है तभी उन कर्मों का फल मिलता है। तू नाना प्रकार की खटपटों की वृद्धि करने के वदले सवके सारस्वरूप एक हरि के नाम को ही अपने गले का हार वनाये रख।

राम का भजन तमाम मधुर वस्तुओ का सार है। वह जन्म-मृत्यु के दुःख का और त्रिविध ताप का नाश कर डालता है। खाते-खाते युग-के-युग वीत गए, फिर भी भूखे-का-भूखा! जिसने रामरस का सेवन किया वह जन्म-मरण के फेरे मे कभी नही पड़ता।

जो कोई रास्ते चलते-चलते रामनाम लेता जायगा, उसे कदम-कदम पर यज्ञ करने का पुण्य प्राप्त होगा। उसका शरीर तीर्थ और व्रत के उत्पत्ति-स्थान के समान वन जायगा। वह सचमुच धन्य-धन्य हो जायगा। लौकिक व्यवहार के काम करते-करते जो रामनाम का स्मरण करता रहेगा, वह सदाकाल सुख की समाधि का भोग करेगा। जीमते-जीमते जो ग्रास-ग्रास पर रामनाम जपता जायगा, वह खाने पर उपवासी ही है। भोग और योग दोनों प्रसंगों पर रामनाम का स्मरण करनेवाला कभी कर्म मे लिप्त नही होता। जो हर समय रामनाम का जप करता रहेगा, वह जीते हुए भी मुक्त ही है।

रामनाम के समान दूसरा पुण्य नही है। नाम तो अमृत का भी सार है, निज स्वरूप का वीज है, और सव गुह्य तत्त्वों में गुह्य है। नारायण के सिवा और किसीपर भरोसा न रखो।

: ३ :

भक्त और सज्जन

जो अपने हित के विषय में जाग्रत हो गया है, उसके माता-पिता धन्य हैं ! उसे देखकर भगवान प्रसन्न होते हैं ।

जिसका सब अहंकार चला गया और जिसमें निंदा, हिंसा, कपटादि व्यवहार नहीं, और देहबुद्धि भी नहीं, वह निर्मल स्फटिक सरीखा स्वच्छ है । अधिक क्या कहें, उसका सब शरीर चिन्तामणि रूप ही है । वह सब तीर्थों को पावन करनेवाला तीर्थ हो गया है । जिसके दर्शन से मोक्ष-लाभ होता है, जिसका मन शुद्ध हो गया है, उसको माला आदि बाहरी चिह्नों की कुछ भी आवश्यकता नहीं, एक मन के शुद्ध होने से वह सब भूषणों से मंडित होता है, और जो निरन्तर हरि-गुण गाता है, उसमें अखंड आनन्द रहता है । जिसने अपना द्रव्य, देह और मन प्रभु के अर्पण कर दिया है और जिसे कोई आशा नहीं है, ऐसा पुरुष पारस-मणि से भी बढ़कर है ।

जिसके मुंह में अमृत तुल्य मीठे शब्द हैं, जिसकी देह प्रभु के लिए ही लगी हुई है, जो पुरुष सर्वांग-निर्मल है और जिसका चित्त गंगाजल के समान पवित्र है, उसके दर्शन-मात्र से तापत्रय मिटते हैं एवं विश्रांति मिलती है ।

चित्त का अगर समाधान हो गया तो विषवत् दुःख भी सोने सरीखे सुख-कर लगते हैं । विषय की अति-लालसा बहुत बुरी है । चित्त अगर दिलगीर है तो चन्दन का उबटन भी अंग को जलाता है । मन अगर उन्मन है तो सुखोपचार से भी पीड़ा होती है ।

जिसको एक देव ही प्रिय है और जिसमें देव के प्रति अपार प्रेमभाव है,

भूमंडल मे वही पवित्र और वही भाग्यवान है। उस पुरुष की सेवा देव को पहुचती है।

जो भगवान के चरणो का चिन्तन करते है, वे सज्जन मेरे प्रिय सगी-साथी है। अन्य लोगो को मै मर्यादापालन-मात्र के लिए मानता हू; क्योकि आखिर वे सव देव के ही तो अग है। परन्तु मुझे हरि-भक्ति करनेवाले जितने प्रिय है, उतने अन्य नही है।

चौदह लोक जिसके पेट में है, उसे हमने अपने कठ में धारण किया है। हमारे घर कुछ कमी नही है। ऋद्धि-सिद्धि हमारे दरवाजे पर सेवा मे तत्पर रहती है, जिसने तमाम राक्षसो को ब्राध लिया, ऐसा प्रभु हमारे सामने दोनो हाथ जोडता है। जिसके रूपादिक नही, उसे हमने अपनी भक्ति के जोर से सगुण-साकार किया है। जिसके शरीर मे अनन्त ब्रह्माड है, वह हमारे लिए चीटी के समान है। आशा को छोड़ करके हम भगवान से भी वलवान हो गए है।

संचित, प्रारव्ध और क्रियमाण कर्म भक्तो के नही होते; क्योकि भक्त के अन्दर-वाहर एक देव का ही अनुभव होने के कारण उसका सवकुछ वही होगया है। सत्त्व, रज, तम गुणो की वाधा कभी हरि के भक्त को नही होती। देव से भक्त भिन्न नही है।

द्रव्य-इच्छा जिसके चित्त मे नही है, मान, अपमान, मोह, माया जिसे मिथ्या भासती है, जो सर्व-तत्त्वज्ञान संपादन कर और ज्ञान का अभिमान छोड़कर आचरण करता है, ऐसे पुरुष को साधु अकस्मात् मिल जाते है।

जो पर-दु ख और पर-सुख को अपना माने वही साधु है। वही देव को समझता है। मक्खन जैसे अन्दर-वाहर कोमल है, उसी तरह सज्जनो का चित्त होता है। निराश्रित को जो हृदय मे रखता है, अपने दास-दासियो पर जो

पुत्र की-सी दया रखता है, उसे क्या कहूँ ? वह तो मानो साक्षात भगवान की मूर्त्ति है ।

जिनके चित्त में द्रव्य और दारा (कामिनी और कांचन) की इच्छा नहीं है, उनने संसार पार कर लिया । शुभ-अशुभ से जिनको हर्ष-शोक नहीं होता, वह जग में जनार्दन होकर रह रहा है । जिसने देव को देह अर्पण कर दिया, फिर उसे कुछ करना बाकी नहीं रहा ।

हम प्रभु के दास कलिकाल से भी डरनेवाले नहीं हैं । मृगजाल सरीखे प्रपंच में भटक जायं, यह कभी नहीं होनेवाला । धूल उड़ाने से सूरज की किरणें मैली नहीं होतीं ।

नटों की तरह वेष रखकर हम सब खेल दिखाते हैं, मगर उससे हमारे आत्मबोध में अन्तर नहीं पड़ता । बहुरूपियों की तरह कौतुक से हमने खेल जमा रखा है, फिर भी अपने स्वरूप को जानते हैं । स्फटिक मणि लाल-पीले रंगों की चीजों के योग से वैसे रंग बदलती है, मगर किसी रंग से मिल नहीं जाती । हम संसार में अलिप्त रहकर निश्चिन्त क्रीड़ा करते रहते हैं ।

कोई साधनेवाला हो तो साधन दो ही हैं—पर-द्रव्य और पर-नारी को त्याज्य माने । फिर उसके घर भगवान का भाग्य और सकल संपत्ति आयगी । ऐसे पुरुष का शरीर देव का भंडार-गृह है ।

जैसे किरणें सूर्य से अलग नहीं, मिठास शक्कर से अलग नहीं, उसी तरह मैं देव से अभिन्न हूं ।

सच्चे भक्त परमेष्ठि पद को भी सर्वदा तुच्छ मानते हैं । सदा हरि का चिन्तन करना ही उनका धन है । इन्द्र-पद आदि भोग भोग नहीं भवरोग हैं । सार्वभौम राज्य से भक्तों को कोई काम नहीं । पाताल के आधिपत्य को वे केवल दारिद्र्य मानते हैं । योग-सिद्धि-सार उन्हें असार लगता है । मोक्ष

सरीखा महान् सुख भी उन्हे दु.ख लगता है। हरि के सिवा उन्हे सबकुछ त्याज्य लगता है।

जिसने अपने हृदय में हरि को धारण किया है, उसका आवागमन समाप्त होगया। सारा व्यापार सफल हो गया। हरि हस्तगत होगया कि फिर कोई भय चिन्ता नही। हरि भक्तो में कोई विकार नही रहने देता।

जिसने भगवान के लिए संसार छोड दिया है, उसपर उनका अतिशय प्रेम होता है। वह ऐसे भक्त के पीछे दौड़ता है और उसके सुख-दु.ख को स्वयं सहता है। भक्त का काम है कि वह भगवान का नाम ले, और भगवान का काम है कि वह भक्त के काम करता रहे।

जो अखड भक्ति जानता है, वही देव का पुतला है। उसके विना कोई पंडित हो या बुद्धिमान, मेरे नज़दीक दैववान नही। जो नवविध भक्ति जानता है, वही शुद्ध है।

जो मन को विषयो में जाने से रोककर पीछे लाता है, वह बली है, इस भूमडल में वही एक शूर है।

स्नान संध्या करता है मगर परान्न खाकर उसे निष्फल करता है, जिसके अन्दर सात्त्विक धैर्य नही, उसे देव कभी नही मिलता।

प्रेम-सूत्र की डोरी से हरि को जिधर ले जाओ, उधर जाता है। भक्त ने अपनी काया, वाचा और मन को भगवान के अर्पण कर दिया है। सारी सत्ता उसके हाथ है। इसलिए आकुल-व्याकुल क्यो होऊं ? वह जैसे रखेगा, वैसे रहूंगा।

जिसका हृदय निर्मल है, वह भावशील धन्य है। जो देव-प्रतिमा का पूजन करता है, संत कहे वहां भाव रखता है, विधि-निषेध न जानता हुआ चित्त में भगवान की एकनिष्ठा रखता है, देव को उसका भाई हो जाना पड़ता है।

जहां-जहां राजा जाता है, तहां-तहां उसका वैभव साथ चलता है। उस राजा को क्या यह कहना पड़ता है कि "मैं देशान्तर जा रहा हूं, यह वैभव साथ ले चलो।' जिसके हृदय में नारायण रहता है, उसपर नारायण की पूर्ण कृपा रहती है। उसकी पहचान समता है।

सब जीवों मे भगवान है, इस संकेत को मैं जानता हूं, इसीलिए तीर की तरह तीक्ष्ण उत्तर देता हूँ।

हमारी यह विशेषता है कि अनीति के मार्ग से चलनेवाले जीवों को हम नीति-मार्ग दिखलाते हैं और जो कोई चूके, उसकी फजीहत करते हैं। एक परमात्मा का सदा डंका बजाने मे क्या बाधा है? इससे अगर सारी दुनिया कुपित हो तो क्या हो जायगा? जहां राम-कृष्ण-नाम सरीखे बाण छूट रहे हों, वहां अविद्या को कहां जगह मिलेगी? जहां सत्य का उपदेश होता है, वहां असत्य नहीं ठहर सकता।

अब मैं तेरे ही मंगल गुणगान करूंगा और मग्न होकर हरिकथा कहूंगा। मेरे तमाम भय, व्याकुलता और पाप-पुण्य को निवारनेवाला तू है। आजतक जो भोग भोगे, उन्हें तेरे हवाले करके इस दुनिया मे अलिप्त होकर रहूंगा। हम तेरे प्यारे बच्चे हैं, तेरे चरणों से अलग नहीं रह सकते।

मुझे किसी चीज के मांगने की इच्छा नहीं, तो फिर मैं ऐसा संकोच किस-लिए करूं? दिल मे इच्छा रखकर मैं किसी चीज की कभी प्रशंसा नहीं कर सकता।

भगवान को मन्दिर की सीढ़ी के पास से नमस्कार करने से कैसे उद्धार हो जायगा? साक्षात् भेंट होने से जो होता है, वही सबको अच्छा लगता है। एक-दूसरे को नजर से न देखकर कोरी बातें करना फिजूल है। इसीलिए मैंने बोलना बन्द करके अन्तःकरण को साक्षी बना रखा है।

हम विष्णुदास कुमुम से भी कोमल और वज्र से भी कठोर हैं । हम देह-वुद्धि से मृतक और आत्मस्थिति मे जीवित है। भलो को अपनी लगोटी तक दे देगे, मगर दुष्ट के सर पर लाठी जमा देगे। मां-वाप से भी ज्यादा प्यार करनेवाले हैं और शत्रु से भी ज्यादा हानि पहुंचानेवाले है। हमारे आगे अमृत क्या मीठा है और विप भी क्या कड़ुवा है? हम पूर्णत मीठे हैं, जिसकी जैसी इच्छा होगी, हमारे निकट पूरी होगी।

जिनके अन्त करण मे दया है, वे ससारी प्राणी धन्य है। वे यहा उपकार के लिए ही आये है। उनका घर वैकुठ में है। जो झूठ नही वोलते, देह के प्रति उदासीन है, ओठो पर मधुरी वाणी है, उनके पेट मे पुष्कल अवकाश है।

मन निष्कपट है, वाणी रसाल है, इसीको लक्ष्मी (ऐश्वर्य) कहते है। ऐसे ही भाग्यवत को जीना चाहिए। जो हमेशा नम्र रहता है, उसका नाम लेने से हरकोई संतुष्ट होता है।

सवकुछ विष्णुमय है, यह वैष्णव ही जानते है। वाकी के लोग ज्ञान का वोझा व्यर्थ सिर पर लिये फिरते है। विभिन्न साधन केवल कष्टप्रद हैं। उन सवके करने मे उलझनमात्र हैं। अहकार क्षीण होना चाहिए। अभिमान का नाश करना वडा कठिन है। मायाजाल वज्र से भी नही टूट सकता। इसका मर्म केवल हरिभजन से ही मिलेगा; अन्यथा नही।

मुनि लोग गर्भवास से डरकर मोक्ष को चले गए। मगर हम विष्णुदासो को वह गर्भवास सुलभ है। सारे ससार को प्रभुमय कहकर हमने उसे ब्रह्मरूप कर दिया। पुराणो मे मोक्ष-साधन को कठिन वताया है, मगर हमारा वैकुण्ठ जाने का मार्ग वड़ा सरल है। हम सव जनो के साथ हमेशा हरि का प्रेमसुख लेते है।

ईश्वर के सेवक वडे शूर है, इसलिए काल उनके पैरो पडता है। वे घोप से प्रभु का जय-जयकार करते है, जिससे दोपो के वड़े-वडे पहाड भी जल

जाते हैं। जिनके हाथ में शांति, दया, क्षमा के अमोघ बाण हैं, संसार में वही बली हैं।

देह और देह के संबंधियों को निंद्य माने और श्वान-शूकरों का वन्दन करे—ऐसी स्थिति हो जाय, तभी समझना कि 'मैं' और 'मेरे' का खात्मा हो गया। मोह के कारण गर्भवास करना पड़ता है। घर, पैसा और स्वदेश से विरक्त रहना और वन के वृक्षों तथा पशुओं से मिलना चाहिए। 'मैं' और 'मेरा' जबान पर भी न आये, ऐसी स्थिति जिनकी है, वे सच्चे साधुजन हैं।

सारा जगत् हमारा देव है। लेकिन जो बुरे स्वभाव के हैं, उनको मैं धिक्कारता हूं। वे काल के मुंह में पड़ेंगे। उनके हित के लिए मैं छटपटाता हूं। हमारा कोई सगा नहीं, कोई शत्रु नहीं, हम सरल वाणी से बोलते हैं, मगर जिनमें दोष है, उसे वह मर्मभेदी लगता है।

हम हाथ में वीणा और करताल लेकर हरि-चिन्तन में नाचें, यही सुलभ रहस्य हमको संतों ने बतलाया है। उस कीर्तन में होनेवाले ब्रह्मरस पर समाधि का सुख न्योछावर कर डालो। इस ब्रह्मरस-पान से हमारे चित्त में संशय उत्पन्न नहीं होता, सारी सृष्टियां हम हरिदासों की दासियां हो जाती हैं। मन उससे विश्रांति पाता है, और त्रिविध-ताप क्षणमात्र में नाश होता है।

हे देव, मान-अपमान तेरी क्षुल्लक संपत्ति है। जिन्हें इन्द्रियों ने दीन बना दिया है, जो तेरी क्षुल्लक संपत्ति का लोभ रखते हों, उन्हें भले तू सदैव ललचाता रह। तू ऋद्धि-सिद्धि देगा, मगर उसे स्वीकार कर ले, ऐसे भक्त हम नहीं। अरे ठग, तूने बहुत-से ऐसे लोगों को फंसाया है।

जो देह से उदास हैं और जो आत्म-ज्ञान का विचार कर रहे हैं, उन्हें भक्त समझना। नारायण ही उनका एक विषय है। उन्हें धन-जन, माता-पिता पसंद नहीं आते। ऐसे भक्तों के निकट के समय गोविन्द आगे-पीछे रह-कर उनका रक्षण करता है। कोई संकट नहीं आने देता। सपने में भी

सहायता करनी चाहिए। उसमें भय माना तो नरक जाना पडता है।

भगवान की ओर द्रुतगति से जानेवाला शुद्ध और धन्य है। परमार्थ का ज्ञान सुनकर जिसके मन में उसका परिपाक होता है, हरिप्रेम जिसके हृदय में हिलोरें लेता है, और स्वहित के लिए जागृत रहता है, ऐसा व्यक्ति ही देव है।

परोपकारी व्यक्ति विशुद्ध गुणो की राशि है। देव उसके अधीन है। उसका धैर्य कभी भंग नही होता।

निष्ठावन्त भाव भक्तो का स्वधर्म है। इस निश्चित मर्म से न चूको। भगवान में निष्काम, निश्चल विश्वास रखो। दूसरे और किसीका आसरा न टटोलो। ऐसे अनन्य भक्त की किसने उपेक्षा की है ?

नित्य नाम लेनेवाले की चरणरज लेने की देव इच्छा रखता है और उसे पाने के लिए वह उसके पीछे-पीछे दौड़ता-फिरता है। जिसके कंठ में वैकुण्ठ-नायक है, उसमें और देव मे क्या कोई अन्तर है ?

हरिदास की भेंट होने पर पाप, ताप, दैन्य तत्काल चले जाते हैं। नाम-संकीर्त्तन में जो आनन्द-मस्त होकर नाचता है, महादेव उसकी चरणरज की वन्दना करते हैं।

जो भगवान को नित्य भजता है, वही पंडित है। जो सर्वत्र समब्रह्म देखता है, सब जीवों मे राम को देखता है, वही प्रभु का सच्चा दास है। उसके दर्शन करने से दोष जाते हैं।

जिसकी सपूर्ण वासनाएं नष्ट हो गई है, उन्हे ही ब्रह्मरस की मिठास की प्राप्ति होती है। जो सारे भेदभाव की सलग्नता से नितान्त मुक्त होकर, बाह्यज्ञान की उपाधि से रहित होकर, निज स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने बैठे

हैं, जिनका मन एक परमात्मा में स्थिर हो गया है, उन्हें निजानन्द-सुख की क्या कमी है ? जो स्त्री-पुरुषों को परमार्थ का भान कराते हैं, वे ही पुण्यवान और परोपकारी हैं। मैं उनके यहां उनका पायन्दाज बनकर पड़ा रहूं।

हम हरि के दासों को त्रिलोक में कोई भय नहीं, क्योंकि हमें संकटों से छुड़ाने के लिए वह हमारे आगे-पीछे खड़ा है। हम अपने भावों से उसे जैसा बनायें, वह वैसा बनता है और भक्तों का काम करने के लिए वह दौड़ा आता है। मैं सुख से विट्ठल को गाऊं, और निरन्तर उसी सुख में रहूं।

वैष्णवों में मुक्ति का दारिद्रय नहीं और वे संसार की ओर भी नहीं देखते। गोविन्द उनके चित्त में डटकर बैठा है। आदि, मध्य, अवसान में वही है। उन्होंने अपना सर्व भोग नारायण के अर्पण कर दिया है, और वे उसीका नित्य मंगल-गान करते हैं।

उनका बल, बुद्धि परोपकार के ही लिए है। उन्होंने नामामृत से पेट भर लिया है। वे देव सरीखे ही दयावन्त हैं। वे अपना-पराया नहीं देखते। उनका जीव ही देव है। जहां वे रहते हैं, वही वैकुण्ठ है।

जिनके चित्त में अहंकार नहीं और प्रपंच का भान नहीं, वही त्यागी हैं। यदि त्यक्त वस्तु का ध्यान रहा तो यह सब विडम्बना है। भले-बुरे का आप स्वयं विचार करें, बतानेवाला और कौन मिलेगा ?

जिनको हरि प्रिय हैं, वह पुरुष हो अथवा स्त्री, मुझे भगवान् के समान है। उस भक्त को मैं प्रेम से नमस्कार करूंगा। जिनका अन्तःकरण निर्मल है, उन्हींका अन्तर्बाह्य कोमल है। उन्हींकी संगति में मेरा सब समय जाय तो उस समय की प्रत्येक घड़ी मेरे लिए मंगलमय है। मैं अपनी जान उसपर न्योछावर कर दूं।

हरि के दासों को भय है ऐसा कोई न कहे। भगवान उनके सामने खड़े होकर उनकी इच्छाएं पूर्ण करते हैं। हरि के दासों को किसी भी प्रकार

की चिन्ता हो, यह असंभव है। भगवान उनको अन्न-वस्त्र, आदि सब-कुछ दे देते हैं।

हरि के दासो के यहा हमेशा सुख का कल्लोल होता रहता है। जहा हरि के दास वसते हैं, वहां पुण्य फलते हैं और पापो का नाश होता है। नारायण उनके रक्षण के लिए सुदर्शन लिये फिरते हैं। हरि के दासो के यहा काम करने के लिए देव सेवक बनकर रहता है।

हमारा स्वदेश तो त्रिलोक है। हमारी निगाह मे कोई दुष्ट नही है। हममे और दूसरो मे भेद नही है। हरिनाम ही हमारा धाम है।

जिस प्रकार बालक का सब बोझा मां पर होता है, उसी प्रकार मेरा सारा बोझा तुम संतो पर है।

वही पवित्र है जो विकल्प की जड उखाड फेंकता है। जो बाहरी ठाठ दिखाते है, वे गन्दगी से भरे हुए हैं। जिसकी बुद्धि त्रिकाल सावधान है, वही आत्माराधन कर सकता है। जो संदेहग्रस्त है, वे प्रकृति के बंधन मे हैं। जो समबुद्धि समाधानरूप है, वही अखंड ध्यान सच्चा है। अपना चित्त और वित्त उसके हवाले कर दो।

जैसे आकाश सर्वत्र संपूर्ण है, वैसे ही संतो को समझो—गंगाजल, अमृत, सूर्य, हीरा, कपूर और चिन्तामणि की तरह विशुद्ध।

भक्तिमान के आगे बलवान का भी बल नही चलता। उसका बल राम है। वह भक्त जहा बैठेगा, वहा सर्वशक्ति बिना बुलाये आती है। वह कही भी रहे, उसकी ओर कौन बुरी निगाह से देख सकता है?

श्रद्धावान भोले भक्त की स्थिति कभी नही बदलती। शेष अपना पुण्य क्षय हो जाने पर भ्रष्ट हो जाते हैं। केवल विष्णुदास ही गर्भवास के दुःख को नही जानते। विठोबा का नाम ही अच्छा और सच्चा है।

भक्तजन जैसी इच्छा करते हैं, देव वैसे ही नाचता है और उस देव के सुकुमार चरणों का वे वन्दन करते हैं। भक्ति की अभिलाषा से वे मुक्ति को भूल जाते हैं। जिसे मांगने की इच्छा नहीं है, भगवान् उसका साथ नहीं छोड़ते।

जो कोई मांगते नहीं, उन्हींकी सेवा करने के लिए देव दौड़ता है। वह दीन रूप धारण करके भक्त की सेवा का ऋण धीरे-धीरे उन्हींकी सेवा करके चुकाता है। उन भक्तों से वह एक क्षण भी अलग नहीं रह सकता। सचमुच, जिसमें भक्ति-भाव है, वह देव का भी देव है।

हरिभक्तों के यहां मोक्ष और सिद्धियां दासियां बनकर रहती हैं।

जो मन, वचन, काया से भगवान के दास हो गए हैं उन्हें काम-क्रोध की बाधा नहीं होती। जो स्वामी पर विश्वास रखता है, वह उसपर अपनी सत्ता चलाता है और उसके समस्त ऐश्वर्य का भोक्ता बनता है। हम अपना चित्त निर्मल कर लेंगे तो वहां गोपाल आकर रहने लगेंगे।

जो अर्थ, देह, प्राण सबकुछ छोड़ दे, वही हरि को जीत सकता है। मोह, ममता, माया, चिन्ता छोड़कर विषयासक्ति को जला डालना चाहिए। लोक-लाज, अभिमान, मत्सर का नाश कर देना चाहिए। शान्ति, क्षमा, दया से मित्रता कर उन्हें भगवान को बुलाने सविनय भेजना चाहिए। अपनी जाति और विद्वत्ता का अभिमान छोड़कर संतों की शरण जाना चाहिए।

जो किसीसे कुछ नहीं मांगता, वही देव को प्रिय लगता है। उसीको देव समझना चाहिए और उसके चरणों में लीन रहना चाहिए। जिसके मन में भूतदया है, उसके घर चक्रपाणि रहता है। मैं निश्चयपूर्वक कहता हूं कि उसके समान कोई नहीं है।

जो संतों की सेवा करने में जी चुराता है उसकी ओर मेरी दृष्टि न पड़े।

जो संतो के चरणो में अपना भाव रखता है, उससे भगवान् अपने-आप आकर मिलते है।

साधक की दशा उदास होनी चाहिए। अन्तर्बाह्य कोई उपाधि नही होनी चाहिए। वह लोलुपता छोडे, निद्रा को जीते और भोजन परिमित करे। एकान्त मे अथवा लोकान्त मे प्राणो पर आ बनने पर भी स्त्रियो से न बोले। ऐसा साधक ही गुरु-कृपा से ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

संसार की तमाम माया देव को अर्पण करके जो कोई उसकी भक्ति करेगा, उसकी भक्ति देव को अत्यत प्रिय लगेगी। प्रारब्धानुसार परमात्मा जिसको जिस स्थिति में रखे, उसमे समतापूर्वक रहना चाहिए। मै तो अपने योग-क्षेम का सारा भार देव के सिर पर डाल दूगा और अपना तमाम ससार उसके चरणो में समर्पित कर दूगा।

जो देव की अनन्य भाव से शरण लेते है, उन्हे उत्तम जाति के जानना। जो हरि के शरणागत हुए है, उनके हृदय मे हरि का स्वरूप लबालब भर गया है, और फिर छलक पड़ता है—उसमें ब्रह्मानुभव की झलक दिखाई देने लगती है।

हरि के भक्तो को अपने मन में भय तो लेशमात्र भी नही रखना चाहिए। कारण कि जिनके नारायण सरीखा सखा है, उनके निकट संसार का मूल्य क्या है ? हम अपने मन को हमेशा सतोप-अवस्था मे रखें।

वैराग्य का उदय सत्संगति मे रहने से होता है। सन्त साधकों को अपने संसर्ग से निष्पाप बना देते है।

सज्जनो के दर्शन मे शुभ वचन सुनने को मिलते है। वे धर्म-नीति का प्रतिपादन करते है। उनके प्रति क्रोध रखने से हित नही होता। अत्यत मृदु रहना ही अच्छा होता है।

मेरे मन को प्रिय लगे ऐसे मेरे सच्चे सगे तो हरि-भक्त ही हैं। निर्मल रहना ही उनका अहोभाग्य है। उनका धैर्य कभी भंग नहीं होता। जब उन्हें भूख-प्यास लगती है, तब भी वे अपने चित्त में देव का ही स्मरण करते हैं। नारायण ही उनका धन है।

जो सच्चे कुलीन होते हैं, वे अपने मन की ऊंची स्थिति से कभी नहीं डिगते। उनके हृदय में जो भाव होता है, उसको वे अपने बाह्य आचरण में प्रकट करते हैं। उनका विचार और वर्ताव एक होता है। उनमें अस्थिरता का दाग कभी नहीं लगता। उनके रंग में भंग कभी नहीं पड़ता। हीरा घन की चोट से नहीं फूटता।

जिन्होंने परमार्थ के रास्ते प्रयाण कर दिया है, जो आ पड़नेवाले आघातों को सहन करने का मनोबल रखते हैं, वे ही सच्चे शूरवीर हैं।

जो अपने चित्त को शुद्ध भाव से देव के अर्पण करके उसकी शरण में जाते हैं, वे देव के समस्त प्रकार के वैभव के मालिक हो जाते हैं। देव उन्हें अपने से दूर रखता ही नहीं है।

संतों द्वारा आप मुझे अंगीकृत करा दें, तो फिर ब्रह्मज्ञान गिड़गिड़ाता हुआ चला आयगा, परन्तु भगवान के भक्त उसे ग्रहण करने की ज्यादा उतावली नहीं करते। वे संत ब्रह्मज्ञान से अलग भागते-फिरते हैं और ब्रह्मज्ञान उनके घर में जबर्दस्ती घुस जाना चाहता है। जो ब्रह्मज्ञान अति प्रयत्न करने पर भी नहीं मिलता, वह उदासीन वृत्तिवालों के गले पड़ता जाता है।

जिनके अन्तःकरण में देव का वास हुआ उनके संसार के झगड़े तो फ़ौरन पट गए समझो। देव उनके सर्वस्व का नाश करके उसे अपनेसे अलग नहीं रहने देता। उनकी वाणी को देव असत्य, आदि शब्दों में नहीं पड़ने देता। जिनको देव की संगति हुई, उनका मल धुल गया। देव उन्हें किसी प्रकार की आशा या ममता के पाश में फंसने नहीं देता। जिन्हें देव की प्राप्ति हो गई है वह ऐसा

सुवक्ता हो जाता है कि सारे जगत को अपने वश मे कर लेता है। ये सब देव-प्राप्ति के लक्षण है।

जिसका चित्त हमेशा संतुष्ट और निर्मल रहे, और जो योग्य प्रसग को तथा योग्य काल को पहचानता हो, उसे सन्त जानना।

मैं वन मे जाकर रहूगा और जिन-जिन वृक्षो के पत्ते खाने-योग्य होगे उन्हे तोडकर खाऊगा। शेप सारे समय विट्ठल का चिन्तन किया करूगा। वृक्षो की छाल का वल्कल बनाऊगा और इस प्रकार देहाभिमान को जला डालूगा। प्रतिष्ठा को वमन (उल्टी) के समान समझकर विट्ठल प्राप्ति के लिए एकान्त सेवन करूगा। जहातक हो सके, मैं प्रपच के प्रति प्रेम नही रखूगा और अरण्यादि स्थलो मे रहकर एकान्तवास का अभ्यास करूगा। जिसका ऐसा निश्चय है उसके प्रापञ्चिक दु:ख-दारिद्रय का नाश हो जाता है।

जिसने यत्नपूर्वक उपाधियो का नाश कर दिया हो, उसने स्वबल से देव को हस्तगत कर लिया समझना, जिसने धन और जन का त्याग कर दिया हो, वह स्वयं जनार्दन रूप हो गया है। इसमे उतावली काम नही देती। इसके रस की प्रतीति अन्तरग के अनुभव से होती है।

हरिभक्तो को किसी भी प्रकार का भय तो होता ही नही। उन्हे कोई चिन्ता भी नही होती, क्योंकि भगवान उनके समस्त दु:खो का निवारण करते रहते है। प्रभु उनके शरीर से दु:ख-दारिद्र्य का स्पर्श भी नही होने देते। जो समस्त जगत् मे व्यापक है, वही एक विश्वम्भर मेरा सखा हो गया है।

जिस दिन मुझे हरिभक्तो का दर्शन होता है वह दिन मुझे दिवाली-दशहरा के समान है।

भक्त जो कुछ बोलता है उस तरफ भगवान ध्यान देते है। भगवान् अपने भक्तो की भक्ति से बध गये है।

वेदों में ईश्वर के विषय में असीम लिखा है। सार इतना ही है कि भगवान की शरण जाना और निष्ठापूर्वक उनका नाम लेना। अठारह पुराणों का भी यही सिद्धान्त है।

सच्चे सन्त काम-क्रोधादि का अपने हृदय में स्पर्श भी नहीं होने देते।

जिसके मन में हरिनाम बस गया है अकेला वही तरता है, और सब उसकी वन्दना करते हैं।

अन्तर में दयाभाव रखकर लोकोपकार करना ही जिसका कुलधर्म हो, उसके हाथ में सब साधनों का सार आ गया समझना।

जिन्होंने सबकुछ त्याग दिया, वे तो सदा के लिए सुखी हो गए। उनको किसी प्रकार की अपवित्रता नहीं छूती। सत्यभाषी लोग सांसारिक काम करते हुए भी संसार से अलिप्त रहते हैं। परोपकारी में आत्मस्थिति का उदय हुआ समझना। जो पर-गुण-दोष-विषयक टीकाएं न तो करता है और न सुनता है, वह जगत् में रहते हुए भी जगत् से अलग रहता है। परमार्थ प्राप्ति का सच्चा मर्म समझे बिना सारा परिश्रम व्यर्थ है।

जिसमें वास्तविक ब्राह्मी-स्थिति का उदय हुआ है, उससे तो एक तिनका भी नहीं टूटता, तो फिर जीव का वध तो वह कर ही किस प्रकार सकता है?

जिसके संसर्ग से प्रेम में वृद्धि हो प्रेम हो तो दूना हो जाय, उसे ही सन्त कहना है, और जिसके संसर्ग में आने से हरि-प्रेम घट जाय, उसे ही दुर्जन और पाप-रूप कहना है।

परमार्थ-पथ का सेवन करनेवाला कभी किसीके साथ वाद-विवाद में नहीं उतरता।

भगवान और उसकी भक्ति

एक भगवान के सिवा और किसीकी स्तुति करना हमारे लिए ब्रह्म-हत्या के समान है। हम विष्णुदासो का एकविध भाव है। हम दूसरे को देव कभी नही कहनेवाले। अगर स वचन से पलटू, तो मेरी जवान शतखड हो जाय। अगर मन मे किसी अन्य देव का सकल्प लाऊ, तो मुझे जग के सव पाप लगे।

सतो का अतिक्रम करके देवपूजा करना अधर्म है। देव को सुनाये गए मंत्र और चढाये गए पुष्प, देव के सिर पर मारे गए पत्थरो के समान है। यदि कोई अतिथि को त्यागता है और देव के लिए नैवेद्य तैयार करता है, तो ऐसी भेद-बुद्धि से की गई देव की सेवा सेवा नही, ताडना है।

सतो की सेवा करनी चाहिए। कारण, वह देव को पहुचती है। उससे सव कार्यो की सिद्धि होती है। भक्त देव के ही अग है। धर्म का मर्म यही है।

भगवान् का आश्रय लेने पर तुम्हें मुक्ति की चिन्ता करने की आवश्यकता नही है। तव तुम्हारे अन्दर दैन्य-दारिद्र्य भी नही रहेगा।

देव मेरे आगे-आगे रहकर सारे भोग भोगता है। मै सव कर्तृत्व-भोक्तृत्वरहित होकर यो ही वैठा हू। आजतक मेरे पीछे लगे हुए शुभाशुभ कर्मो के सुख-दु ख का निरसन 'करने और भोगनेवाला देव ही है,' इस ज्ञान से होगया।

'जीव और शिव' का खेल कर्ता ने लीला से ही किया है। सारा आभास

अनित्य है। सचमुच तो जगत् विष्णुमय है। वर्णधर्म खेल है। सबकुछ एक-ही से बना है, उसमें भिन्न-अभिन्न का व्यवहार कैसा ? यह निर्णय साक्षात वेद-पुरुष नारायण ने किया है। उसी प्रसाद का रसानन्द मुझे प्राप्त हुआ है। इसलिए भगवान के चरणो के पास ही मेरा वास होगा। उनसे मैं कभी जुदा न होऊगा ।

नारायण की कृपा से विषवत् दु ख अमृतवत् सुख समान हो जाता है ।

शक्तिमान हरि के सेवक होने से हम भी शक्तिमान हो गए है। ससार को लात मार दी। काम-क्रोधादिक छहो ऊर्मियो को नष्ट कर दिया। जन, धन, तन को तृणवत् कर दिया। अब हम मुक्ति के मस्तक पर है।

इस कलियुग में दूसरा उपाय नही चलता। भगवान के चरणो की ही शरण गहनी चाहिए। उसीके पेट में सब पुण्य है, और उसीसे सब पापो का नाश होता है। उसे लेने के लिए समय और काल देखने की आवश्यकता नही, न किसी त्याग की ।

खाने को न मिले; सन्तान न बढे, मगर नारायण की मुझपर कृपा रहे। मेरी वाणी मुझे ऐसा उपदेश करती रहे और दूसरे लोगो से भी यही कहती रहे। शरीर की विडम्बना हो या विपत्ति आवे, मगर मेरे चित्त मे नारायण रहे। यह सब प्रपच नाशवंत है, इसलिए गोपाल को हमेशा स्मरण करने मे ही हित है।

✓ भाव ही भगवान है ।

जहा-जहा जो-जो भोग प्राप्त हो, वे सब हरि ही भोगता है, ऐसा समझ कर हरि की सेवा में समर्पण करना चाहिए। इसीको सहज पूजा कहते है। निरभिमान रहना चाहिए। जीव ने कर्तृत्व-भोक्तृत्व का अभिमान न रखा तो देव उससे अलग नही

आगे-पीछे, अन्दर-वाहर, सर्वत्र अगर देव ही है तो हरि के दास को भय किसका ? देव के पास काल का वल नही चलता। उस धनी के यहां कमी किस वात की है ?

देव अपने एकनिष्ठ भक्त का भार अपने सिर पर लेकर उनके योग-क्षेम की चिन्ता रखता है। अगर भक्त मार्ग से भटका, तो वह उसका हाथ पकड़-कर सरल मार्ग दिखा देता है।

एक भगवान के चिन्तन से क्या नही होता ? भगवान का चिंतन सर्व-साधनो का सार है और वह भवसिंधु से पार उतारनेवाला है।

जिस पद की हम इच्छा करेंगे, भगवान हमें उस जगह ले जाकर पहुंचा देगा। उसका चिन्तन करें तो वह चित्त को अपने स्वरूप से ओतप्रोत कर देता है। इच्छित फल की प्राप्ति के लिए शरीर मे भगवच्चिन्तन का बल चाहिए। तव सिद्धि उसकी चरण-सेवा करती है।

भगवान की चाकरी करने से इच्छा पूर्ण होती है और आत्मा को अपना परम पद प्राप्त होता है।

भगवान ही मेरा देव और भगवान ही मेरा गुरु हो गया है। वह मेरी अभिलाषाए पूर्ण करता है और अन्त मे अपने पास वुला लेता है। भक्तों के पीछे-आगे खडा रहकर वह उन्हें सभालता है, और उनपर आनेवाले संकटों को दूर करता है और उन्हें योग-क्षेम देता है। उन्हें रास्ता दिखलाकर मोक्ष-मार्ग पर लगाता है।

वहुत-से विद्वान तर्कशास्त्री होते हैं, मगर भगवान का पार उन्हें नहीं मिलता। वहुत-से पाठ-पाठान्तर करने से और अर्थो का विचार करने से भी भगवान की महत्ता उन्हें नही अनुभूत होती। भोलेपन के विना भगवान का लाभ नही होनेवाला। ज्ञान के माप से उसे कितना ही मापो, व्यर्थ जायगा।

धीरज धरने से नारायण सहायक होता है। वह अपने दासो पर श्रम नही पडने देता, और चिन्ता भी नही करने देता। हम आनन्द से कीर्त्तन करें और हरि के गुण गायें।

सचित कर्म जल सकते है। भगवान के चिन्तन मे पापमल तथा ताप-जाल नही रहने पाता।

भगवान का ध्यान अन्त करण मे करना, यही उसका मुख्य पूजन है। इसके अलावा सब उपाधिया पाप है। सहज स्वरूप स्थिति ऐसी स्थिति है जिससे कभी जी नही ऊबता।

ज्ञान की बाते कहना भी कठिन है, तो हृदय मे अनुभव कैसे आ सकता है ? इसलिए अज्ञ जीव अगर हरिभजन और हरिकथा मे सम्यक् प्रकार से चित्त लगायें, तो उनके दु ख का परिहार होगा। वन मे जाने से समाधान नही होता।

उदर-पोषण के योग्य काम करना चाहिए, परन्तु विशेष आत्मीयता तो नाम की ही रहे। चित्त में भगवान का ध्यान धरने का ही काम करें। देव की सेवा में जुड जाने की ही भावना भाग्यवानो को करनी चाहिए और यह सारी बल-बुद्धि खर्च करके करनी चाहिए।

भगवान का नाम लेकर भीख मागना लज्जास्पद है। ऐसा जीवन नष्ट हो जाय। भगवान ऐसे लोगो की हमेशा उपेक्षा ही करते है। देव के प्रति भक्ति-भाव हुए बिना, जीव को हरि के समर्पण किये बिना, बाहरी भक्ति दिखलाना व्यभिचारवत् है। विषयेच्छा से दीन होकर दुनिया को बोझिल करना ही अभाग्य है। इसका कारण देव के प्रति अविश्वास है। सच्ची श्रद्धा हो तो विश्वम्भर क्या-क्या न कर देगा। उसके चरणो को दृढता से पकडना ही सार है।

हरिभक्ति के भाववल से हरि के भक्त अविनाशी ह। योग, भाग्य, व शक्ति उनके घर चलकर आती है।

हे देव, अगर भक्ति-सुख का अनुभव नही आया तो मैं ज्ञान लेकर क्या करू ?

अव देव के अतिरिक्त मुझे कुछ नही वोलना, यही एक नियम कर लिया है। काम क्रोध को देव के अर्पण कर दिया है।

जो हीरा घन की मार से नही फूटता, वह अच्छी कीमत से अगीकार किया जाता है, उसी तरह जो जग के आघात सहन करता है उसको देव अपना वना लेता है।

जहा अपनी मान-प्रतिष्ठा है, वहा अपनी अप्रतिष्ठा करके पचभूतात्मक नष्ट देह की विडम्वना कर डालनी चाहिए। ऐसा करने से घर-गृहस्थी कैसे रहेगी ? जिसका हरि से प्रेम है वह तद्रूप हो जाता है।

विना भक्ति का ब्रह्मज्ञान विना शक्कर के दूध के समान है। विना नमक के अन्न रुचिकर नही होता। अन्धे को कुछ सिखाओ तो वह उसका नाममात्र जानता है। तवूरे का सार भाग उसके तार है।

हम जैसी भावना करते है वैसी देव की देन होती है, इसलिए यत्न करने से क्या नही हो सकता ? कृपासिन्धु भगवान् अपने दास की उपेक्षा नही करते; वह उसके अन्तर की व्यथा जानते है। छोटा वालक मा से मागना नही जानता मगर मा उसके हृदयभाव को जानती है; और उसे किसी तरह का दु ख न हो, ऐसा करती है। मुझे इसका अनुभव है; कोई अन्यथा वोले तो मैं नही मान सकता।

यह नारायण जीवो का जीवन है, अमृत स्वरूप है, ब्रह्माण्ड का भूषण

है, सुखद सगतिवाला, और काल का भी काल है। वह निज भक्तो का शरण-स्थान है, माधुरी का माधुर्य, आनन्द का कौतुक और प्रीति का प्यार है। वह प्रभु, भाव का निजभाव और नाम का भी नाम है। वह सव सार-का-सार है।

यदि तू ही नही मिला तो कोरे ब्रह्मज्ञान का मै क्या करू? ऋद्धि, सिद्धि, शास्त्रनिपुणता तेरे विना भार है।

हे प्रभो, मै तेरी चरण-सेवा साधने के लिए जन्म लू। हरि नाम कीर्त्तन, सतपूजा किया करू और तेरे दरवाज़े पर लोटा करू। आनन्द से परिपूर्ण रहकर मै कही भी रहू। सुख-दु:ख की मुझे इच्छा नही। न कोई दूसरा उपाय करूं, न आशा रखू। सव प्रकार से उदासीन रहू तो जैसा-कहूं-वैसा काम करनेवाली दासी वनकर मोक्ष मेरे घर रहेगा।

ज्ञानावस्था से मैं वहुत डरता हू। हे नारायण, वह मेरे निकट न आवे। आपके भक्ति-सुख की समता कर सके ऐसी त्रिलोक में कोई चीज़ नही है। अर्ध-निमिष सत्सगति का कल्प के अन्तपर्यन्त वैकुण्ठ में रहने के समान है। सत्संग करनेवाले के पास मोक्ष आदि पद वेचारे विश्रान्ति लेने के लिए आते हैं। मुझे अखण्ड भक्ति दे।

चातक पृथ्वी पर भरे हुए जल की ओर न देखकर प्राणो को कठ मे रखकर मेघ की वाट जोहता है। सूर्य से विकसित होनेवाली कमलिनी चन्द्रामृत न लेकर सूर्योदय की प्रतीक्षा करती है। गाय अपने वच्चे को छोड़ दूसरे वछड़े को अपने पास नही आने देती। पतिव्रता को सर्वभाव से अपना पति ही प्रिय होता है। इसी प्रकार एकविध-भाव से धैर्यपूर्वक प्राणोत्सर्ग होने पर भी नियम न छोडने का दृढ निश्चय हो, तभी मेरे विठोवा की वात छेड़े।

भक्त के अन्त करण का भाव देव जानता है और उसे पूर्ण करने का उपाय करता है। कहने-मागने की जरूरत नही है। जी-जान से धैर्यपूर्वक उसका अनुसरण करके अविनाशी फल की प्राप्ति कर लेनी चाहिए। वालक

नही मागता, फिर भी मा उसे वुलाकर भोजन देती है। उस देव का आश्रय लेकर कितने ही पगुओं ने गिरि पार कर दिये हैं।

अनन्य भक्त अज्ञानी भी हो, देव को अतिशय प्रिय है। उपमन्यु, ध्रुव और प्रह्लाद क्या जानते थे? उनके चित्त मे नारायण बसा हुआ था। प्रभु स्वय भोला भक्त है और हमने उसके चरण पकड रखे हैं।

भक्तिपथ वहुत सरल है; वह पुण्य-पाप रहित है, इसलिए जन्म-मरण नाशक है। भक्तिपथ पर खडा हुआ विठोवा हाथ उठाकर वुलाता है और अपने मुह से कहता है कि भक्तो का सारा भार मैं उठाता हूं। वह अपने भाविक भक्तो को पार उतारता है और कुतर्कियो के सिर फोड़ता है।

हमारा मन धीरज नही रखता; वरना भगवान के पास क्या कमी है? हरि पर सव वोझा डालने पर वह दास की उपेक्षा नही करता।

द्रव्योपार्जन के लिए हम जैसी चेप्टा करते हैं, वैसी हरि-प्राप्ति के लिए करनी चाहिए।

भगवान के चरण तमाम तीर्थों के उत्पत्ति स्थान है और लक्ष्मी जिन का सेवन करती रहती है, सव सत अपने अन्तिम विश्रान्ति-स्थान के रूप में उन्हे ही माग लेते हैं।

देव को अपना वनाये विना जीव को सुख नही मिलनेवाला। देव के विना सवकुछ मायिक और दु खद है। उसके प्रारम्भ से अन्ततक दु.ख ही भरा हुआ होता है।

लोगो की स्तुति करने से अपने आयुप्य की वरवादी होती है। ऐसा करनेवाला नारायण से विमुख हो जाता है और उसमे से सब प्रकार के

पापो की उत्पत्ति होती है। देव की स्तुति के सिवा कुछ भी सुनने से पाप लगता है।

भगवान को भक्तो की अटपटी वाणी भी अत्यन्त प्रिय लगती है। वह उनकी सम्पूर्ण इच्छाए पूर्ण कर देता है।

चित्त के मत्सर को दूर करना और सुखरूप होकर रहना यही विश्वम्भर का सच्चा पूजन है।

यश, श्री, औदार्य, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य, इन छह गुणो से युक्त केवल भगवान है।

देव के पास मोक्ष की पोटली बधी हुई नही है कि जिसमें से वह मोक्ष निकालकर तुम्हारे हाथ में रख दे। विषयो से मन और इन्द्रियो को खीच लेना और इस प्रकार निर्विषयी हो जाना ही मोक्ष का स्वरूप है।

राम अपने भक्तो के पीछे-पीछे दौडते है। राम के सेवक उनके गले में रस्सी बाधकर जहा चाहें ले जाते हैं। राम अपने सेवको को परमार्थ के रास्ते से भटकने नही देते। वे कभी असावधानी से गलत रास्ते चले जाय, तो राम उनका हाथ पकडकर उन्हें परमार्थ के सम्यक्, मार्ग पर लगा देते है।

नारायण अपने अनन्य भक्तो की इच्छा रखते है, और यदि वे रक हों तो उनको अपनी पदवी तक देकर निहाल कर देते है।

देव का स्वभाव ऐसा है कि जबतक अपना काम पूरा न हो जाय तबतक स्वय क्या करना चाहता है, इसकी किसीको खबर तक नही होने देता।

नारायण जब कृपा करेंगे तब यह प्रापञ्चिक ज्ञान ही ब्रह्मरूप बन जायगा। जब देव अपना स्वरूप बता देगा तब जीव-दशा में पडा ही नहीं रहा जायगा।

देव को पहचानने का साधन एक भक्ति-भाव ही है। इसके सिवा और किसी साधन से उसकी प्राप्ति नही हो सकती।

जिनमे शुद्ध भाव है उनके लिए देव सर्वत्र मौजूद है, और जो भावहीन है उनके हाथ वह कभी आनेवाला नही। देव-रहित कोई स्थान है ही नही, ऐसा जिसका अनुभव हो गया, वह स्वय देव-रूप हो गया।

नारायण का स्वभाव ऐसा है कि अपने भक्तो के सकट, स्मरण करते ही टाल देते है। अनन्त भगवान फल की सिद्धि पर्यन्त अपने भक्तो की मदद करते है और उन्हे निर्धारित स्थान तक पहुचा देते है। भक्तो का तो इतना ही कर्त्तव्य है कि सर्वतोभाव से नारायण की शरण ले।

भगवान पूर्णकाम है। उनके गुणो मे सबसे मुख्य गुण दया है। दया के तो मानो वह समुद्र ही है। वह अपने भक्तो को किसी प्रकार का श्रम या कष्ट नही करने देते। उनकी उदारता देखे तो स्वय लक्ष्मी को उनकी दासी पाते है; उनकी शूरवीरता देखे तो कलिकाल को उनसे परास्त पाते है; चतुर इतने कि सब गुणो की राशि है; पागल इतने कि जिसमे भाव देखा कि उसके सेवक बन गए। अपने भक्तो का जू ा खा जाने का उन्हे बडा शौक है। वह जीव-मात्र मे व्याप्त है, फिर भी उन्हे कोई जान नही सकता। वह सबसे श्रेष्ठ है।

: ५ :

भजन और कीर्त्तन

युक्ताहारादिक किन्ही साधनो की आवश्यकता नही है । तर जाने का अल्प साधन नारायण ने दिखलाया है, वह यह कि कलियुग में कीर्त्तन करो, उसीसे नारायण मिल जायगा । लौकिक व्यवहार छोडने का और वन में जाकर भभूत लगाकर दड लेने की जरूरत नही है । हरि के नाम को छोड़कर सब उपाय व्यर्थ दिखते है ।

हरि-कीर्त्तन से हरि की कृपा का प्रसाद मिलता है । वह दूर हो तो निकट आ जाता है । मै यह मर्म तुमको तुरन्त वतलाये देता हूँ कि तुम अपना मन अपने हित के मार्ग मे लगाओ ।

प्रभु-कीर्त्तन को छोडकर मै शाति, क्षमा, दया क्या जानू ? अमृत के सागर मे डूवकर शरीर के प्रति चिन्तित क्यो र ? मुझे जग मे रहकर आनन्द है, मै वन मे एकात-सेवन क्यो करू ? मुझे विश्वास है, भगवान मेरे साथ चलते है ।

हरि के नाम के गीत जैसे हम गाते है उसी तरह उन्हे चित्त मे भी रखना चाहिए । यही वडा मुश्किल है । अन्न देखने से भूख नही मिटती । हरि की कथा चित्त मे रखने के लिए ही सुनी जाती ह । खाये विना भूख नही मिटती ।

जो देव तप, व्रत, दानादि, वडे-वडे सावनो से नही मिलता, वह नाम लेने से दौडा आता है । जिसके पेट में चौदह भुवन है वह भक्त के कण्ठ में रहता है । श्रीहरि भक्तो का ऋणी है । उसे शास्त्रो-पुराणो या योगियो के

ध्यान मे नही पाया जा सकता। वह तो भक्तो के कीर्त्तन में आकर आनन्द से नाचता है।

हरि-कथा देव-ध्यान ही है। कथा सर्वोत्तम साधन है। कथा सरीखा पुण्य नही है। भावसहित नारायण का नाम लेने से एक क्षण मे महादोष जल जाते है।

जो भाव से कीर्त्तन करता है, वह स्वयं तरकर औरो को तिराता है और नारायण से जा मिलता है, इसमे सशय नही।

जो पवित्र हरिकथा को सादर गायेंगे-सुनेंगे, उनके दोषो के पहाड जल जायंगे। हरिभक्तो के पास समस्त तीर्थ पवित्र होने के लिए आते है, और सर्व पर्वकाल उनके पैरो तले रहते है। हरिकथा का माहात्म्य अनुपम है। ब्रह्मा भी उसके सुख का वर्णन नही कर सकता।

जो कोई करताल, मृदग आदि लेकर प्रेम भरे अन्त करण से हरिनाम कीर्त्तन करता हुआ गाता-नाचता है उसे तद्रूप ही समझना चाहिए।

हरि-भजन सरीखा आनन्द तो स्वर्ग मे भी नही है। हरिनाम-स्मरण करने से चारो प्रकार की मुक्तियो की प्राप्ति होती है।

यह हरिकथा समस्त त्रैलोक्य मे ब्रह्मरस के रूप मे भरी है। विष्णु भगवान उसे हाथ जोड रहे है; शिवजी उसकी चरणरज को नमस्कार कर माथे पर चढा रहे है। उस हरिकथा ने कलिकाल को वन्दी-गृह मे डाल रखा है।

जो कोई हरि-कथा गायगा, उसे ससार के दु:खो का स्पर्श भी नही होनेवाला। उसके लिए तो सारा ससार ही सुखरूप हो जायगा।

हरिनाम-स्मरण से पाप क्षणभर में नष्ट हो जाते है। श्रीहरिनाम संकीर्त्तन की जहा गर्जना होती है, वहा सब पाप जल जाते है।

जप-तप आदि साधन करने से जिसकी प्राप्ति नही होती, वह हरि हमको उसके गुण गाने से मिल गया है।

राम-भजन करने मे ही जीवन की सार्थकता है। राम के सिवा सब मिथ्या है। राम के सिवा शेष सब नाशवत है। राम के नाम के सिवा और किसीमें कुछ सार नही है।

अन्य समस्त मीठे रस किस काम के? उनसे इस विकारी देह का ही रक्षण होता है। परन्तु राम का भजन करते हुए सूखी रोटी खाये तो भी वह दूध, शक्कर, मक्खन सरीखा स्वाद और पुष्टि देती है।

हरि-कीर्त्तन करनेवालो को उदर-पोषण की एव तरणोपाय की कोई चिंता करनी ही नही चाहिए; कारण कि इन दोनो बातो का दायित्व देव ने अपने सिर कभी का ले रखा है। देव अपने पीताम्बर से भक्तो का रास्ता साफ करता चलता है। वह अपने भक्तो के घर उनका दासत्व करता रहता है। जिन्होने मन, वाणी, और शरीर द्वारा अपना तमाम भाव देव को समर्पित कर दिया है, उनका सारा भार देव अपने ऊपर लेता है और उनका सारा व्यवहार निभाता है। हाल की बियाई हुई गाय जैसे अपने बछडे की ओर दौडती है, वैसे ही देव अपने भक्त की मदद को दौडता है। 'मुझे देव की प्राप्ति होनी ही चाहिए' ऐसी उत्कठा जिसमे जागी हो, उसे सच्चा भाग्यवान जानना।

: ६ :

सगुण-निर्गुण-विचार

देव भक्तो को अपने नज़दीक रखता है और दुर्जनो का सहार करता है। चक्र-गदा-धारी देव का यही धधा है। निराकार ही साकार हो गया है। जिसकी जैसी इच्छा होती है, भगवान उसे पूरी करते हैं।

शास्त्रो का जो सार और वेदो की जो मूर्ति है, वह हमारा प्राणसखा है। सगुण और निर्गुण जिसके अंग है वही हमारे साथ क्रीडा करता है।

राम अतिशय प्रेम का भूखा है। इसीका उसके यहां अकाल है।

संतो का अनुभव-सिद्ध ज्ञान शव्दज्ञानियो को स्वीकार नही! संत तीव्र सगुण भक्ति-भाव धरकर तर गए; मगर वह तार्किको के अनुभव में नही आया और उन्होंने सगुण देव का निषेध ही किया।

शुद्धचर्या सत-पूजा है। इसमे धन या वित्त नही लगता। सगुण भक्ति के मार्ग से गए तो हमारा विश्रान्ति-स्थान, हरि का सगुण रूप, अपने-आप भक्त को खोजता जाता है।

सतो की सगति से देव को सुख हुआ, इसीलिए वह उनकी सेवा करता है। निर्गुण देव सगुण साकार होकर सतो की पूजा करता है और उनको दण्डवत करता है।

किसी गांव की सीमा वनाने से पृथ्वी के खण्ड नही हो जाते। भक्ति के लिए अरूपी परमात्मा हरि व हर के सगुण रूप मे आया।

हमे मोक्षपद तुच्छ है। हमें तो भगवत्-चिन्तन के लिए युग-युग मे जन्म

लेना है। हमारे लिए देव ने साकार रूप धारण कर लिया है, अव हम उसे निराकार नही होने देंगे।

यह सच है कि सव जीवो में देव अवश्य है, परन्तु सगुण देव के साक्षात्कार के विना कोई नही तर सकता। सवमें ज्ञान है, परन्तु भक्ति के विना वह ब्रह्म नहीं हो सकता।

देव पाषाण का है और जिस सीढी पर खडे होकर उसकी पूजा करनी है वह भी पत्थर की है। भाव ही सार है। जिन्होने इसका अनुभव किया है, वे स्वय भगवान हो गए है।

ईश्वर सर्वभाव से भक्तो के समागम मे रहता है और कहे विना उनके सव काम करता है। वह उनके हृदय-सपुट मे रहता है और छोटे-से सगुण आकार मे वाहर उनके सामने खडा रहता है। भक्त कुछ मागेंगे इस आशा में वह उनके मुह की ओर देखता रहता है और उनके मनोरथो को तत्काल पूरा करता है। परन्तु भक्त अपना जीव-भाव देव के चरणो में अर्पण करके कुछ भी नही मागते।

जिन्होने देव को निराकार अवस्था से साकार अवस्था मे लाकर रख दिया है, उनको देव का वाप जानना। देव और उसके भक्त परस्पर वडे ही निकट सवध से जुडे हुए है।

देव कहता है कि मै तुमसे दूर हू ही नही, तुम जैसा भाव मेरे प्रति रखते हो, वैसा ही मै तुम्हारे प्रति रखता हू, और उसी रूप से तुमको प्राप्त होता हू।

मजीरे होते तो है दो, परन्तु उनमें ध्वनि तो एक ही उत्पन्न होती है। उसी प्रकार सगुण और निर्गुण मे कोई अन्तर नही है।

स्फटिक शिला में अपना कोई रग नही होता; परन्तु वह पृथक्-पृथक् रगो को धारण करती दिखाई देती है, फिर भी सव गो से अलिप्त रहती है।

उसी प्रकार देव सब प्रकार के काम करता है और स्वय उनसे निर्लेप रहता है। जैसा उसके भक्तो के मन का भाव वैसा वह हो जाता है और उनकी वासनाओ को पूरा करता है।

द्वैत का निरसन होने पर एक हरि ही अवशेष रहता है, तव उसे ढूढने के लिए वाहर जाने की आवश्यकता नही रहती।

अपनी स्वरूप-विस्मृति मे सोये हुए जीव, तू मूलतः परमात्मा स्वरूप है। यह आत्मिक दृष्टि के खुलने पर तेरी समझ मे आयगा।

समस्त जगत् को विष्णुमय जानना ही वैष्णवो का धर्म है। भेदाभेद मतविचार, केवल अमगल भ्रम है।

मैंने चर्म-चक्षुओ से न देखकर भी ज्ञान-दृष्टि से सवकुछ देख लिया है। जिह्वा ने जो रस नही चखे वे सव आत्म-रसना ने चख लिये है। न वोले हुए वोल पारमार्थिक परावाणी ने सव प्रकट कर दिये है। स्थूल कानो से जो नही सुना, वह तत्व मेरे अन्तर्मुख मन में आ गया है।

(ईश) स्वरूप की याद करने से जीव और स्वरूप दोनो एक हो जाते है, उसमें क्षणभर का भी वियोग नही होता। सारा ब्रह्माण्ड परमात्मा का स्वरूप है ऐसी भावना ही पूजा है। भगवान को एकदेशीय मानकर पूजना व्यर्थ है।

'सर्वत्र मै ही भरा हुआ हू'—भगवान ने अपने स्वरूप की यह पहचान करा दी है। इसलिए मै उसके स्वरूप के अतिरिक्त और कुछ नही देखता। मेरी स्थिति और मति देव से पथक् नही है ।

भगवान जिसका सखा है, उसपर सारी दुनिया कृपा करती है। ऐसा सबका अनुभव ोने पर भी हरि की कृपा सपादन न करके सव जीव विषयों

के लिए ही तिलमिलाते रहते हैं। देव जिसकी रक्षा करता है, उसे अग्नि भी वाधा नही पहुंचा सकती।

मैं नि शब्द ब्रह्म का ही प्रतिपादन करता हूं। मैंने देहवुद्धि से मरकर जीवन पाया है। देह से ससार मे हू, आत्मा से नही। सव विषय-भोगो का त्याग हो गया। मैं सर्वसग में रहकर भी नि:संग हूं।

मिठास को जैसे सव गुड ही है, वैसे सवकुछ देव ही हो गया है। अन्दर-वाहर देव ही है, फिर किसको भजू ? पानी से तरग अलग नही है। सोने और गहने में सिर्फ नाम का फर्क है, उसी तरह देव में और मुझमें केवल नाम का अन्तर है, वास्तव में दोनो एक है।

जीव शिव का मूल स्वरूप जो भेदशून्य परब्रह्म है, वहा जीव शिव की समरसता है। जीव और परमात्मा मूलत एक हैं।

मानसिक पूजा ही भगवान को प्रिय है। कल्पना का वह भोग लेता है। भक्ति का वाहरी-ठाठ-वाट उसे पसन्द नही है। भगवान अन्त.करण के भूत-वर्तमान-भविप्यत् के भावो को जानता है।

अगर तू ही विश्व में व्याप्त है, तो मैं तुझसे अलग कहा हू ? अगर अन्दर-वाहर केवल तू ही है तो अन्दर से क्या-क्या निकाल वाहर फेंकू ? और वाहर से क्या-क्या अन्दर डालू ?

निर्गुण से सगुण दर्शन लेने गए तो ऐक्य-भाव में भेद पैदा हो जाता है।

नाशवत अलंकारो से किया गया पूजन क्या सच्चा पूजन है ? यहा सब-कुछ नाशवत है, लोगो को क्षणिक का लोभ दिखाकर कैसे फसाऊ ?

शोक से शोक बढता है, इसलिए हिम्मत करके खूब धैर्य धरो। इस जन्म मे थोडा-सा भी परमार्थ साध लिया तो काफी है।

जिसका जैसा अधिकार है, वैसा उसको मार्ग दिखलाया गया है। चलने से रास्ता मालूम होता जाता है। पार उतरने के बाद नौका को मत जला देना, क्योंकि वह बहुतो का पार उतरने का आधार है।

शांति के परे सुख नही है, इसलिए सबको शाति ही धारण करनी चाहिए। इसीसे तुम भवसागर पार कर सकोगे। अगर चित्त मे काम-क्रोध खदबदाते रहोगे तो शरीर में आधि-व्याधि पैदा होती रहेगी। शाति धारण की, तो त्रिविध-ताप अपने आप चले जायंगे।

देवार्चन करते समय यदि घर सतजन आयें, तो देव को एक तरफ रखकर संत की पूजा करनी चाहिए।

हे जिह्वे, सिवा भगवान के और कुछ न बोल। सब इद्रियो से मेरी यही विनती है कि भगवान से विमुख न हो। मेरे कान सिवा उसके नाम के कुछ न सुने। मेरी आंखें सिवा उसके रूप के कुछ न देखें। हे चित्त, निश्चित, एकविध, और अखड भाव से भगवान के चरणो मे रत रह। हाथ-पैरो चलो और भगवान को नमस्कार करो। भय क्या है ? हमारा पक्षपाती नारायण है।

अर्थी परमार्थ कैसे कर सकता है ? लोभ से चित्त भिखारी हो जाता है।

अपने देहरूपी घर मे देव को निरन्तर बसाना चाहिए। इससे बैठते,

सोते, खाते, चलते वक्त उनका सग रहेगा। सससे सकल्प-विकल्प, पुण्य-पाप भी नप्ट होगे। सव काल भगवान के योग का सुकाल हो जायगा।

अगर पानी निर्मल नही है तो सावुन क्या करेगा ? उसी तरह अगर चित्त शुद्ध नही है तो वोध क्या करेगा ? वृक्ष पर अगर फल-फूल नही आते तो वसन्त ऋतु क्या करेगी ? वाझ के वच्चे नही होते तो पति क्या करे ? नपुसक पति से उसकी स्त्री क्या करे ? प्राण जाने पर शरीर क्या क्रिया करेगा ? पानी के विना धान्य कैसे पकेगा ?

अभिमान का नष्ट होना ही योग और तप है। करना हो तो यही करो। इसीसे आवागमन नप्ट होगा और देह-भार दूर होगा।

अपना हित करने में देर न कर, क्योंकि काल-सत्ता अपने हाथ में नहीं है। जो अपना हित कर लेता है, वही वुद्धिमान है।

सर्वव्यवहार की ओर एक ही समय तू एक मन को कैसे वाट सकता है ? देह को प्रारव्ध के हवाले कर चित्त में भगवान को दढतापूर्वक रख। उसे छोडकर दूसरी वात से सकल्प की ओर मन को न लगा। तभी तेरा परमार्थ कार्य सिद्ध होगा। इसे भलीभाति जानने से सहज स्थिति की प्रतीति ेगी।

परमार्थ की राह जल्दी ले, नही तो दूर पड जायगा। कितनी ही खट-पट की, तो भी सार और ही ले जाते है। प्रपच-भार क्यो व्यर्थ सिर पर ढोता है ? जवतक आयु शेष है, तवतक जल्दी कर। अरे ओ ववूचक ! तुझसे परमार्थ का एक भी धक्का सहन नही होता तो तू परमार्थ-सुख को कैसे प्राप्त कर लेगा ?

उस रास्ते चलना चाहिए जो कि जहा जाना है, वहा पहुचा दे। वहां पहुचने से पहले की वातें वहा पहुचने पर व्यर्थ हो जाती । मै जो पैरों

पडकर ोलता हू सो सुनो। क्या भक्ति-भाव ही वहा जाने का रास्ता नही है ?, मन मे उत्कठा होनी चाहिए।

तुममें पानी हो तो शूर वनो, वरना सीधे-सादे मजदूर वनकर मज-दूरी करो; परन्तु ढोग न करो।

जिसके अन्त.करण मे सतो के वचनो पर विश्वास हो, उसे उपदेश करने की जरूरत नही है।

द्रव्य का काल पीछा कर रहा है, इसीलिए उसका सग करना मिथ्या है। द्रव्य नरक का मूल है। प्रारब्ध से मिलनेवाला दु.ख-सुख नही टल सकता, इसलिए किसी फल की तृष्णा रखना व्यर्थ है। परमार्थ को सादर श्रवण करो और नित्य टिकनेवाले परमार्थ धन को लेते रहो।

अन्तःकरण में हरि का ध्यान करके सुख से तृप्त हो। मुह से क्या वड़-वड़ करता है ? जवतक अनुभव की मिठास नही चखी, तवतक विधि-निषेध की माथा-पच्ची करनी पडती है। मौन धारणकर अपनी वुद्धि को स्थिर करो, यही साधन की सिद्धि है।

तुम स्वयं नकटे हो। शीशे पर गुस्सा क्यो करते हो ?

मनुष्य को चाहिए कि अपने निर्वाह भर के लिए काम करे। चित्त मे हमेशा संतुष्ट रहे, यही नारायण के अन्त.करण में आ जाने की पहचान है। हमेशा आत्म-विवेक से काम करे। अन्तर्मुख होने से आत्मा की प्रतीति होने लगती है।

युक्त आहार-व्यवहार हो; इन्द्रिया नियमित रहें; वहुनिद्रा, वहु-भाषण न हो। परमार्थ महा धन है। अपनी देह देव के समर्पण कर दे, उसका कुछ भी भार अपने पर मत रख। इससे सर्व आनन्द होगा।

पर-द्रव्य और पर-नारी ही गदी चीजें है। जो इनसे दूर है वही पवित्र है। गद्य-पद्य के ग्रन्थ लिखकर दूसरे के पैसे हरण करने की चेष्टा न कर। उससे अपनी बुद्धि निर्लिप्त रख। पाप-पुण्यातीत पूजी इकट्ठी करनी चाहिए। वन मे न जाओ; विश्व और विश्वभर समान है।

ऐ मेरे दुर्गति करनेवाले मन, तुझे कितना समझाऊ ? तू किसीके पीछे-पीछे न लग। अन्य के प्रति किये गए स्नेह से दु ख होता है। जग के प्रति निष्ठुर होने मे ही हरि का प्रेमसुख है। विचारकर देख और वज्र की तरह कठोर हो।

हाथ-पैर अग्नि की खूराक है, इसलिए हरि-भजन छोडकर इनका पालन क्यो करते हो ? भक्तिभाव की जगह लज्जा या लौकिक व्यवहार का विचार न करना। जो इसपर हँसता है, उसे ब्रह्म-हत्या का पाप लगता है। कथा के समय जो कथा-श्रवण में मन पिरोता है, वह देववान है बाकी के लोग पत्थर है जो मनुष्य का जन्म लेकर आ गए है।

सब जग देव ही है तो भी उसके स्वभाव की ओर न देखकर उसके पैर ही पडना चाहिए। अग्नि का सौजन्य शीत-निवारण है, उसे पल्ले में न बावो। सर्प, बिच्छू नारायण ही है, तो भी उन्हें दूर से ही नमस्कार करो, हाथ न लगाओ।

तू भगवान् का स्मरण करता रह। काल तेरा दास हो जायगा। माया-जाल का बन्धन टूट जायगा। समस्त ऋद्धिया-सिद्धिया तेरे कहने के अनु-सार करनेवाली हो जायगी। सब शास्त्रो का यही सार है। यही वेदो का मुख्यार्थ है।

तू निश्चल बैठकर उसका ध्यान कर। वह तुझे अन्न-वस्त्र देगा। हमें अधिक सचय करके क्या करना है ? सबकी पूर्ति करनेवाला देव हमारा ऋणी हो गया है। वह बड़ा दयालु व मायालु है, भक्तो की जरूरतें जानने-

वाला है। शरणागतो से लाड लडाना भी जानता है। उससे मांगना या कहना नही पडता, क्योकि जिसकी जैसी इच्छा है, उसे वह जानकर पूरी करता है। तू अपनी वाणी को विट्ठल के नाम का अलंकार पहना, इससे तू स्वयं ही दुनिया में विट्ठल हो जायगा।

हरि-भजन मेरे प्रारव्ध में नही है, ऐसा मत कह। रे मूढ, ऐसा मत कह कि मेरी देह विपयोपभोग के लिए है। हे चाण्डाल, ऐसा न कह कि नर-देह परमार्थ करने के लिए दुर्वल है। इन मूर्खो को कहांतक कहूं ? मेरी नही सुनेंगे तो आखिर मुह मे धूल पडेगी।

स्वच्छद जग की सेवा की इच्छा न रखो, क्योकि उससे देव की अवज्ञा होती है। देह का निग्रह करनेवाला देव है, देह उसके हवाले कर देनी चाहिए।

जिन वचनो से नारायण से अन्तर पडे, वे वचन गुरु के भी हो तो भी मत मानो।

भोग से ही रोग होता है। जिह्वा रस-सेवन के पीछे लग गई, तो दस्त होने लगते है।

जिह्वा से नित्य नारायण का नाम लेता जा। इससे जन्म, जरा, व्याधि, पाप-पुण्य. ये सव दु ख नष्ट हो जायगे। जन्म, जरा, दु ख, व्याधि को और काम-क्रोध अहंकार की ऊर्मियो को तू समभाव से सहन करके अविनाशी आत्मसुख अपने अन्दर साध्य कर ले। अक्षरो को रटने से अभि-मान और विधि-निषेध पीछे लगते है, वाद करने से निंदादि दोषो का वज्रलेप लगता है। इस प्रकार ये भूषण दूषणो की जड है। इसलिए इन विषयो की छटपटी छोड़ दे और सर्वभाव से सतो की शरण जाकर हर हाल मे प्रसन्न रह।

जिस पुरुष के दो स्त्रिया है, उसके घर पाप वसता है। जिसको पाप की तलाश हो, वह उसके घर चला जाय। जो झूठ वोलता है, वह पाप की खान है। जो सत्य वोलता है उसके समीप सर्वसुखो का भडार है।

देव के सिर पर अपना सव भार डालकर उसको देह समर्पित कर देनी चाहिए। 'देह मै हू' यह अभिमान मिथ्या है, ऐसा समझकर सारे ससार-भार के निमित्त स्वरूप इस अभिमान का त्याग कर दो। इस देहादिक प्रपच का सग छोड दो तो तुम्हारे अन्दर भगवदानंद प्रकट होगा।

'देह मै नही हू' यह भाव दृड होने पर जीव परमात्मा स्वरूप हो जायगा। इसलिए सारा समय इसी चिन्तन मे लगाओ। देव से कोई स्थान खाली नही, इसलिए अपने रक्षण की चिन्ता न करो। जीव को अर्पण कर देने से हृदय में देव प्रकट हो जायगा।

देव पर पडे हुए अपने समस्त भार को कही पर उतारो मत। भूख-प्यास के समय चिन्तन करना अच्छा। देव के चिन्तन में लापरवाही दिखाने से श्रीपति का अन्तराय होता है। मै देव के सिवा सारा वैभव गंदा मानता हू।

स्त्री के त्यागने से ब्रह्मचर्य की प्राप्ति नही हो जाती; देग त्यागने से वैराग्य नही आता। वासना के कारण काम और भय वढता है। इसलिए धीरज से व्यर्थ की वासनाओ का त्याग करें। झूठी प्रशसा करने से वाणी गदी होती है।

अन्न न छोड, वनवास न कर। सव भोगो के समय नारायण का चिन्तन कर। मा के कधे पर चलनेवाले वालक को चलने का श्रम नही होता, उस वालक को मा के सिवा सव भावनाओ का मुडन करना चाहिए। न भोगो में फस, न त्याग मे पड। प्रसगोपात्त जो-जो भोगता जाय,उसे देव के अर्पण करके नष्ट करता जा। इसके अतिरिक्त अव और कुछ वार-वार मत पूछ, क्योकि इसे छोडकर अव और कुछ उपदेश शेष नही रहा।

जबतक मुह मे राम नही है, तबतक सब झझट व्यर्थ है। सावधान ! सावधान ! सकल्पो से मन को मुक्त करले ! जो भोग तेरे भाग मे आयें उन्हें भगवान के अर्पण करके केवल ईश-चिन्तन कर।

जग को सच्चा मर्म नही बतलाना। तद्विषयक भ्रम रहने देना। सच्चा मर्म नही बतलाने से वे पीछे लगेगे और व्यर्थ श्रम उठायगे। वे सीखी हुई बात को हृदय मे धारण नही करते। अनुभव के बिना कहना वृथा श्रम होगा।

एक जाति के प्राणी का दूसरी जाति के प्राणी से भेंट कराने का संकल्प हृदय मे न लाओ। जो होनेवाला हो, वह होनहार के अनुसार होता रहे, जिस प्रकार कि नारायण ने तय कर दिया है। व्याघ्र की भूख मिटाने के लिए गाय का वध करना क्या पुण्यकार्य होगा ? स्वार्थी आदमी पूरा विचार नही करता।

सयाने को उपदेश का एक वचन ही काफी है। अगर तू आखे नही खोलेगा तो अन्तकाल मे यमराज तेरी खबर लेगा।

ऐसे देव को छोडकर तू दीनवाणीवाला कैसे हो गया ? कामनाओ से हृदय भरा रखते हो, मगर आखिर मे हाथ मे धूल भी नही रहने की। उदार, जगदानी, शरणागत का अभिमानी पाडुरग भगवान है। वह तुलसीदल, पानी और चिन्तन का भूखा है। सबके दु ख का निवारण वह स्वय करता है। उससे मिलने के लिए कोई प्रतिबन्ध नही है।

पहले अज्ञान के कारण जन्म-मृत्यु के बहुत-से दु ख सहन किये, अब आगे क्यो अन्धे बने ? जो कुछ सुख-दु ख हो उन्हे देव पर डालने के अलावा किसी तरह भी कोई खटपट न करो।

इस मिथ्या प्रपच का मोह न रखकर जीव को साक्षी के रूप मे रहना

चाहिए। अनेकत्व मे एकत्व है और एकत्व में अनेकत्व। प्रकृति स्वभाव के अनुसार उसका अनुभव होता है।

लोगो में अपना मान वढा देखकर निश्चिन्त न हो, भूतो की प्रीति से भूत-गति (योनि) मे जाना पडता है। इसलिए अपने मन को भगवद्भक्ति में लगाना चाहिए, वरना मन इद्रियो की सहायता से वहिर्मुख हो जायगा। एक परमात्मा की ही ओर मन को लगाना चाहिए। मन का स्वभाव ऐसा है कि जिस रग की ओर उसको लगावे उस रग मे रंग जाता है। देव सव कर्मो से निष्काम है और जीव अवस्था मे ही कर्म करने की आदत होती है।

निर्वैर होना साधन का मूल है, शेष सब झझट गौण है। ढोग का कोई व्यवहार अधिक नही चलता, आखिर सच-झूठ का फैसला हो जाता है। जिसको प्रभुचिन्तन का ही प्रेम है, उसे ही सच्चे लाभ मे समझना।

जो आशा को समूल खोदकर निकाल फेंक सके वही वैरागी वने।

तू जो कुछ सीखा है, उसका अभिमान रखेगा, तो यमलोक के रास्ते जायगा। जिसमें नम्रता नही, वह तलवार नही कठोर लोहा है।

जहा हरिनाम का गजर वज रहा है वहा तू अपार लाभ मुफ्त लूट!

रास्ते में चलते हुए कदम-कदम पर मा पाडुरग का चिन्तन करना चाहिए। इससे वह भगवान सव सुख लेकर चिन्तन करनेवाले के पीछे लग जाता है, और अपनी पसन्द का रस उसके कठ मे डालता है। उस भक्त पर आसक्त होकर वह अपने पीताम्वर की छाया करता है, और उसके मुह से क्या प्रिय उत्तर मिलते है, यह सुनने के लिए उसके मुह की ओर देखता है। नारायण के नाम स्मरण को ही जीवन वना डालना चाहिए। इससे भूख-प्यास नही सतायगी।

अपना हित चाहते हो तो दम्भ को दूर करदो। शुद्ध चित्त से ईश्वर की

सेवा करो। विट्ठल का नाम एकान्त मे प्रेम से गाओ। इससे अलभ्य लाभ घर पर चला आयगा। यह आखिरी वाण है; इसे छोड़कर वाणी का व्यर्थ व्यय न करो।

घाटे का व्यवहार खोटा है। जिन्होने आलस को जीत लिया है, उन्हें देखकर भी तू अपने आलसीपने पर लज्जित नही होता।

जन्म-मरण में पड़कर तू नित्य नये-नये दु खो से कष्ट पा रहा है। इसकी तुझे शर्म नही है ? काम-क्रोधादि चोर तुझे पथ-भ्रष्ट करके नष्ट करने पर तुले हुए है। तू यह देखते हुए भी क्यो नही देख रहा ?

शूरता का ही मोल है। थोथी वकवास से कार्य-सिद्धि नही होती। प्रतिज्ञापूर्वक किया हुआ निश्चय कभी न छोड़ो। धैर्य ही सफलता का कारण है। धैर्य से नारायण सहायक होता है। हरि निश्चय से अपने दासों का रक्षण करता है।

यदि तूने एकान्त मे वैठकर एकाग्रचित्त से अपना चित्त शुद्ध कर लिया, तो तुझे ऐसा सुख मिलेगा जिसका अन्त नही।

मानव खुद ही तरता है और खुद ही मरता है। अतः अपना उद्धार स्वयं करो।

अरे, तुझे एक सेर अन्न की आवश्यकता है, उसीकी इच्छा रख ! वाकी वड़वड़ व्यर्थ है। मोह-पाश में वंधकर क्यो तृष्णा वढाता है ? तुझे साढ़े-तीन हाथ जगह चाहिए, अधिक पाने का श्रम व्यर्थ है। एक राम को भूला कि शेष सव श्रम ही है।

जिस तरह कोल्हू के वैल पर करुणा न लाकर तेली उसे मारता है, उसी प्रकार भवभ्रमण के दु.ख सहने ही पड़ते है। इसलिए जवतक तुम्हारे हाथ में है, अपना स्वहित देख लो।

मनुष्य-देह दीर्घ काल के बाद मिली है। शीघ्र लाभ ले लो, वरना वह नष्ट हो जायगी। हरिनाम तत्परता से लो और सुख के भंडार भर लो। बाद मे फुरसत के समय अपना हित-साधन कर लेंगे, ऐसा कहना पागलपन है। क्या जीना अपने हाथ मे है ?

हर एक की चाह पूरी करने के लिए नारायण हाथ ऊपर उठाये खड़ा है। वह सर्वज्ञ, उदार, माईबाप जिसको जो रुचता है, उसके सामने ला रखता है। जैसे अपने कर्म होते हैं वैसी ही पसन्द होती है और वैसा ही खाना और भोगना पड़ता है। इसलिए मूल वस्तु को ही विचारपूर्वक ग्रहण करना चाहिए। जो बोया जाता है उसीका फल काटना पडता है! बबूल के पेड़ पर आम कैसे आयंगे ? ईश्वर से कुछ न कह, तू स्वयं ही अपना शत्रु-मित्र है।

अगर तू इन्द्रियो का दमन नही कर पाया तो फिर तूने यह परमार्थ की दुकान क्यो लगा रखी है ? बाहर से धुला हुआ, अन्दर से मलिन। इस तरह अन्त में तेरे हाथ कुछ नही लगेगा।

लोग जब निष्काम होगे तभी राम को आखो से देखकर रामरूप हो जायंगे।

हे सतो, अच्छी तरह सुनो। सबका सार एक यही है कि दुर्जन का त्याग करना चाहिए। प्याज़ से भी ज्यादा बदबू प्याज़ खानेवाले के मुह से आती है। जैसा सग वैसा रग।

अन्तकाल का संबंधी भगवान ही है, उसीका आश्रय ले।

शरीर को बाहर से धोने मे क्या है ? जबकि अन्त.करण गंदा है, पाप-पुण्य की गदगी तेरे अन्दर भरी हुई है। फिर हमेशा पवित्र रहनेवाली भूमि की छुआछूत का तू क्यो विचार करता है।

ऐ मेरे अधीर मन, मैं तुझसे एक बात पूछता हू । तू निरन्तर दुश्चित क्यों रहता है ? खाने की चिन्ता करता है । तुझसे अच्छे तो पक्षी है । चातक पक्षी पृथ्वी का जल नही पीता, इसलिए उसके लिए बादल गर्मी में वर्षा करते है । कितने ही जीव पानी और वन मे है, उनके पास कोई सचय है क्या ?

अरे, तू कृपालु देव का चिन्तन क्यो नही करता ? वह अकेला सबका प्रतिपालन करता है । गर्भ के बच्चे की वृद्धि और मा के स्तनो में दूध की उत्पत्ति कौन करता है ? ग्रीष्म काल मे पेड़ों पर पत्तिया फूटती है । उन्हे पानी कौन देता है ? उसने तेरी क्या चिन्ता नही की ? तू उसीका स्मरण करता रह । जिसका नाम विश्वभर है, उसीका ध्यान तू सतत धर ।

कन्या-पुत्रादि का मोह मगलदायक नही । इससे अपने और परमात्मा के बीच एक लौकिक पर्दा पड़ जाता है ।

दही मे छाछ और मक्खन दोनो होते है, परन्तु दोनो को एक दाम पर न मागो । आकाश के पेट मे चन्द्र और तारागण होते है, परन्तु दोनो को समान न समझो । पृथ्वी के पेट में हीरे और कंकर-पत्थर है, इन दोनो को एक-दूसरे से न बदलो । उसी प्रकार संतो और संसारियो को समान रूप से न भजो ।

जिससे अपकीर्ति हो उसका पूर्णरूप से त्याग कर देना चाहिए ।

त्याग करना हो तो अहकार का त्याग कर । फिर जिस स्थिति में तू हो उसमे रह । फिर देख कि शेष क्या बचा । द्वैत को सामने न आने दो । शुद्ध मन और सन्तोष चाहिए ।

उत्तम व्यापार से द्रव्य प्राप्त करो और उसे उदासीन भाव से खर्च करो । इससे उत्तम गति और उत्तम भोग मिलेंगे । परोपकार करना, पर-

निन्दा न करना, पर-स्त्री को मा-वहन समझना, भूत-दया से गाय आदि पशुओ का पालन करना, प्यासो के लिए जगल में पानी का प्रवन्ध करना है, शातरूप रहना और किसीका वुरा न चाहना, वडो का महत्त्व वढाना—गृहस्थाश्रम के ये ही मुख्य फल है और परमपद-प्राप्ति के लिए आवश्यक वैराग्य-वल यही है।

कोई चीज खो जाय तो उसके लिए व्यर्थ जी न जलाना। यह समझ ले कि वह वस्तु आपने कृष्णार्पण कर दी।

हे देव, विषय-सेवन मे तू मुझे आलसी वना और तेरा नाम लेने की शक्ति दे। और कुछ वोलने मे मेरी वाणी को गूगी कर, परन्तु तेरा गुणानुवाद करने मे मेरी वाणी को वल दे। तेरे चरणकमलों के अतिरिक्त और कुछ देखने मे मेरी आखो को अधा वना दे।

हे प्रभो, आपसे मेरी एक ही माग है कि दुर्जन की संगति मुझे विलकुल न होने दे। उससे घडी-घडी चित्त में विक्षेप होता है।

जो अपने हित की वात कहता है, वह मानो जीवनदान देता है, और जो मनपसन्द आचरण करने की वात कहता है उसे घात की समझना। जिस तरह गलत रास्ते पर जानेवाले अधे को रोका जाता है, उसी प्रकार अधर्मी को जवरदस्ती करके भी रोकना चाहिए।

तू ऐसा संन्यास ले, जिससे तेरे सकल्प का नाश हो जाय ; फिर तू कही रह—वस्ती में, जगल मे, पलग पर या जमीन पर, चाहे जहां। जैसे आकाश अणु-अणु मे समाया हुआ है, उसी प्रकार देव सर्वत्र है।

तू शास्त्रो के शब्दो का वाचन करता जाता है, वारंवार उनका पारायण करता है, परन्तु जवतक तेरा अन्त.करण शुद्ध न होगा, तवतक वह सव व्यर्थ है। भावार्थ ग्रहण किये विना ऊपरी वाचन भाररूप है। प्रभु-प्राप्ति करनी है तो उसके प्रति एकनिष्ठा-युक्त भाव रखता जा।

अपना सम्पूर्ण भार देव के सिर पर डालकर अयाचक वृत्ति स्वीकार करना ही सार है। अपनी देह को देवाधीन कर देना और उसके द्वारा योग्य समय पर योग्य कर्म कराते रहना। इस विश्व के अन्दर विश्व का पोषण करनेवाला है ही, ऐसा निश्चय मन के साथ कर लिया कि वही जिस समय जैसी चाहिए, वैसी व्यवस्था कर लेता है। तुम निश्चय समझो कि उपर्युक्त स्थिति एक प्रकार का बल ही है।

जो तुम्हे ब्रह्मज्ञान चाहिए तो सन्तों के चरणो की सेवा करो।

'यह मेरा' और 'यह तेरा', यह द्वैतभाव जाता रहे तो जीवात्मा पर जो-जो बोझा है वह सब उतर जाय। इस एक बात के अलावा आपको और कुछ भी नही करना है और कुछ त्यागना भी नही है। स्वरूपभाव स्वभावत. शुद्ध है। प्रपंच के मोहजाल में आशा-तृष्णा के कारण जीव बन्धन मे पड गया है। जीव को फसा मारनेवाला तो उसके मन का झूठा संशय ही है। स्वरूप-स्थिति मे सुख का अनुभव होता है और दु.ख की छाया भी वहा नही होती। सबका कर्त्ता एक नारायण है। लाभ-हानि, मान-अपमान को समान जानना। इसे ही सच्चा सुखी जानना।

एक अच्युत के नाम-चिन्तन से तेरे तमाम कार्य सिद्ध हो जायगे। एक हरि के ऊपर निष्ठा रखना, यही सौ बात-की-बात है।

केवल भाव-भक्ति से ही तुम्हारा काम होनेवाला है। दंभयुक्त आचरण से तुम्हें नक्सान ही होगा।

देव की ही स्तुति करो और जो निन्दा करने का मन हो तो भी देव की ही करो। दूसरे काम में वाणी का व्यय करना अधम कार्य है। लोग सम्यक् ज्ञान की बाते सुनते वक्त बहरे हो जाते है और नरक मे जानेवाले कामो को पैसा खर्च करके भी करते हैं।

भवसमुद्र में डूबे हुओ को बारहो घडी उस पार जाने का विचार करते रहना चाहिए। यह देह नाशवान् है और किसी-न-किसी दिन विलीन हो जानेवाली है। इस ऐहिक और प्रापचिक व्यवहार के उन्माद के वशीभूत होकर अधा नही बन जाना चाहिए।

महान् पुरुषो के साथ जान-पहचान रखना अच्छा है। उसके अतिरिक्त अन्य लोगो के साथ भाई-चारा करने की झझट मे न पड़ना। लूटना हो तो ऐसा खजाना लूटो कि जिसका कभी अन्त ही न आवे। महान् यश प्राप्त करके जीना उत्तम जीवन है।

परमार्थ की साधना करते समय कोई दूसरे की बाट न देखे, न दूसरे के लिए खडा रहे।

जैसे मिश्री की डली पानी में पडकर उसके साथ मिल जाती है, उसी तरह तुम भी अपना मन नारायण को अर्पण करके उसके साथ तद्रूप हो जाओ।

कंगाल लोग बनियो का नाश चाहते है ; मूर्ख पडितो की मौत चाहते है। भाई, तू दूसरो का खयाल छोड़कर देव की शरण में जा।

हे मनुष्यो, तुम जरा भी चिन्ता नही करना और लेश-मात्र भी भय नही रखना। कारण कि नारायण अपने भक्तो का हमेशा सहायक होता है और उनका रक्षण करता है। उससे कुछ कहना हो तो शब्दो की योजना करके सुन्दर भाषण तैयार करने की भी जरूरत नही पडती। निर्भय और नि शब्द रहो।

ऐ मेरे मन, तू अन्य कोई संकल्प-विकल्प न करके केवल भगवान का ही चिन्तन करना। वहा अपार सुख-भंडार है। वहा कल्पना की गति कुठित हो जाती है। वहां हृदय को विश्राति मिल जाती है और तृष्णाएं शान्त हो जाती है।

दुर्जनो के साथ कभी मित्रता नही करना, उनका कभी संसर्ग भी न होने देना ; क्योंकि उससे वार-वार चित्त का भंग हुआ करता है। दुर्जनो से तो दूर-दूर ही रहना और उनके साथ वोलने तक का प्रसंग न आने देना।

नारायण की एकविध और एकनिष्ठ होकर उपासना करना, क्योकि विषय-भाव से उसे कष्ट होता है। तद्‌विषयक भावना मे तनिक भी अन्तर न पड़ने देना। विक्षेप का नाश करना और नितात एकाकी रहकर आनन्दकन्द श्रीहरि मे अनन्यभाव रखना। आलस और निद्रा का त्याग करना, धैर्य धारण करना और जाग्रतावस्था में रहकर हरिस्वरूप का दृढ़ आलिंगन करना।

अरे जल जाय यह ज्ञान और यह चतुराई! भगवान् के चरणो में मेरा भाव वना रहे, मुझे इतना ही वहुत है। ये आचार और ये विचार भी जल जायं! मेरा मन प्रभु में स्थिर हो जाय यही वहुत है। दंभ, मान और लौकिक व्यवहार मे आग लगे। मेरा मन परमात्मा के ध्यान मे मग्न रहे मुझे इतना ही चाहिए। यह शरीर जल जाय और इसके सम्वन्धी भी जल जायं। मेरे कंठ में निरन्तर परमानन्द श्रीहरि का वास हो यही वहुत है। मेरे मन! जिससे सवकुछ सिद्ध हो जाता है ऐसे श्री विट्ठल के चरणो का आश्रय ले।

चित्त में विवेक का उदय होने पर वैराग्य धारण करना चाहिए। उससे पहले वैराग्य लेने से लोगो मे वडाई मिलती है पर उद्धतता भी आ जाती है। अन्तर के आदेशानुसार आचरण करना ही उत्तम है।

जितना वोलने से तुम्हारा हित हो उतना ही बोलो। व्यर्थ वड़वड करके सुखी जीवो को कष्ट न दो। तुम स्वयं शुद्ध हो जाओ इतना ही वहुत है। मैं तुम्हारे पैरों पड़कर कहता हूं कि दूसरो को धिक्कारो मत; अपनेको शुद्ध बनाओ।

अरे मनुष्यो! तुम अपने जीवन मे चाहे करोड़ों रुपयो की सम्पत्ति

प्राप्त कर लो, फिर भी मरने पर उस सम्पत्ति मे से एक लगोटी भी तुम्हारे साथ नही चलेगी। तुम इस समय पान चबाकर लाल मुह किये फिरते हो, परन्तु आखिर मे तुम्हे फीके मुह ही जाना होगा। आज तुम गद्दो-तकियो पर सोते हो, पर एक दिन तुम्हें गाय के गोवर से लिपी जमीन पर सोना होगा। अगर तुमने रामनाम को भुला दिया तो निश्चित जानना कि जन्म वृथा गंवा दिया।

किसी का सकोच करना है तो अपने चित्त का करो। खूब सुख मिले, वही काम करना। भूतमात्र के प्रति समदृष्टि रखना ही देव की सच्ची पूजा है। मत्सर रखने से दु ख होता है। किसीसे रुष्ट होना हो अथवा मुह चढाना हो, तो अपनी जात पर ही, क्योंकि शेप सव तो हरिरूप है। सवका प्राण हो जाना ही सतपन है।

तू देवताओ के पूजन के झझट मे न पड। जप, तप और ध्यान करने की मायापच्ची न कर। परमात्मा के रास्ते मुड। उसकी भक्ति के आनन्द का अनुभव करने लग। वहा जो सहज गुह्य तत्व है, वे तेरा निजस्वरूप ही है। इसे तू स्वानुभव से देख ले। अव तू सावधान होकर इस एक ही जन्म में ससार-वधनो को तोडकर मुक्त हो जा।

तू हर समय खाने-पीने की ही चिन्ता करता रहता है। अपने कल्याण का तू तनिक भी विचार नही करता। श्रद्धा रख, ईश्वर तेरी कभी उपेक्षा नही करने वाला है।

मुह से 'राम', 'हरि' नामोच्चार का साधन वडा सरल है। इससे अलभ्य लाभ तुम्हारा घर पूछता-पूछता चला आयगा। इसके सिवा कोई कैसी भी भजन साधन करने की चेष्टा करना ही नही। तप, तीर्थाटन, महादान—कुछ भी करने की जरूरत नही है। सिर्फ मन को एकाग्र करके नामचिन्तन करने

से तुम्हे हरिप्राप्ति हो जायगी। केवल नाम की सहायता से ही तुम्हें नारायण की प्राप्ति हो जायगी।

जिसकी संगत करने से मन को सुख होता हो उसीकी संगति करनी चाहिए। जिसके संसर्ग से चित्त को क्षोभ होता रहता हो उनसे दूर रहना चाहिए। जिनका स्वभाव अपनेसे प्रतिकूल हो उनके साथ सम्वन्ध नही रखना चाहिए, चाहे वे कोई हों।

जिस द्रव्य के अन्दर पन्द्रह प्रकार का अनर्थ भरा है, उसे तू दूर फेक दे। जिसमें तेरा कल्याण है, जिससे तेरा सच्चा स्वार्थ सिद्ध हो, उसे तू सिद्ध कर ले।

जवतक मन मे से काम का नाश न हो गया हो तवतक स्त्री-वच्चो का त्याग करना योग्य नहीं है।

अनेक प्रकार की वासनाओ से प्रेरित होकर संकल्प करना और उनके पीछे पडना, इसकी अपेक्षा तू संकल्पो और उनके परिणामो को ही छोड़ दे। इस प्रकार दु.ख का सरलता से अन्त आ जायगा। स्वप्न के जख्मो पर तू व्यर्थ रोता है। जितनी जल्दी हो सके तू मूलदेव की शरण जा। वहा तुझे सव फलो की प्राप्ति हो जायगी।

सारे कुटुम्व का त्याग करने पर भी अगर तत्सम्वन्धी वासना रह गई तो पुन. कुटुम्व की प्राप्ति हुए विना न रहेगी। तो फिर त्यागी होने का ढोग करने का क्या प्रयोजन है?

जो जिसका ध्यान करता है उसके साथ तद्रूप हो जाता है। इसलिए तुम जिस प्रपच का फैलाव किये वैठे हो उसका क्षय कर डालो, और खूब दृढ मनसे

विश्वव्यापी भगवान का स्मरण करने लगो। वह आकाश से भी बडा है और अणु-रेणु मे भी समा सकता है।

अरे! तू अपने मन को संकुचित करके छोटा क्यो बन जाया करता है? देव को अपने हृदय में समा ले और ब्रह्माण्ड को एक ही ग्रास में निगल जा। 'मैं देह हूं' इस भावना से तू छोटे से घर मे घिर गया है।

ग्रन्थों का अध्ययन और पारायण ही करता बैठा न रह। जितनी जल्दी हो सके एक व्रत का आरम्भ कर—देव की ही इच्छा की शरण होकर और देहाभिमान छोड़कर देव का ही भजन करने लग। भगवान ऐसे हैं कि नाम स्मरण करनेवाले को तुरन्त ससार-सरिता के पार उतार देते हैं।

मिलन का सुख लेना हो तो पहले सर हथेली पर लेना होगा। अपने हाथो अपने संसार में आग लगानी होगी और मुडकर देखना न होगा। जिस तरह पतंगा जान जोखिम में डालकर दीपशिखा पर टूट पडता है, उसी तरह तुम्हें भी निर्भय हो जाना चाहिए।

मन में एक भाव और जबान पर दूसरा भाव यह तू करता तो है, परन्तु अन्तर्यामी परमात्मा तेरे दोनो भावो को जानता है।

इस भयंकर और प्राणघातक धन-सम्पत्ति में लुभाकर तू क्यो भुलावे में पडा है? तू रामनाम गा; कोई गाता हो तो सुन। राजा आदि दूसरे लोगो को तू अपना मानता है। परन्तु जब काल आयगा तब कोई काम नही आयगा।

मेरे राम के सिवा साररूप सुख और किसमें है, यह तू मुझे बताए तो मैं तेरा दास हो जाऊ। कीर्ति और नाम के लिए चाहे जितनी दौड-धूप करो, परन्तु एक दिन उसका नाश हुए बिना नही रहनेवाला है।

ससार का त्याग करने से पहले मन को शुद्ध कर लेना चाहिए। काम-

क्रोधादिक वृत्तियो को आश्रय देने का नाम ही ससार है। जिसने अपने देह-सम्बन्धी लोभ को छोड़ दिया, वही सच्चा सन्यासी है।

यदि तेरा अन्त.करण भगवा रग से रग नही गया तो वाहर से भगवा वस्त्र पहनकर तू क्या करनेवाला है? अपने वहिरग को तू मरते दमतक धोया करे तो भी उससे तेरे अन्त करण का मैल दूर नही होनेवाला।

जिसके ससर्ग मे आने से प्रेम-सुख दूना हो जाय उसकी सगति करनी; और जिसकी सगति से अपने मूल प्रेम मे भी कमी हो जाय, उसे कलमुहा दुर्जन समझना। अगर मिलना ही हो तो मन-को-मन के साथ मिला देना ही उत्तम है।

सारा जगत् देवरूप है, यही एक मुख्य उपदेश मुझे करना है। पहले तो तुममे जो 'मैं-पना' है उसका त्याग कर दो। इतना करोगे तो कसौटी पर खरे उतर जाओगे। इस एक ही वचन मे ब्रह्मज्ञान का भण्डार है, यह निश्चयपूर्वक मान लो।

प्रापचिक काम करते समय उनमे आसक्त मत हो। ममत्व-रहित एवं निर्लिप्त रहना चाहिए। सव प्रकार की लज्जा छोड देनी चाहिए। नाना प्रकार की उपाधियो के वन्धन को तोड डालो और एकत्व मे रहने-वाले एक अद्वितीय परमात्मा का साक्षात्कार करो। समस्त प्रकार के देहा-दिक प्रपचो की माया से अलग हो जाने पर सासारिक कामो मे भी वास्तविक सुख मिलता है। ऐसी स्थिति प्राप्त करने के लिए पहले सद्विचार करके देहादि का सम्वन्ध तोड डालना चाहिए। तुममे और मुझमे दोनो में एक सामान्य आत्म-स्वरूप भाव है। उस स्थिति में अवस्थान करके तुम भेदशून्य और सर्वोच्च स्वरूपावस्था को प्राप्त कर लो।

पचभूतो और सप्त धातुओ से वनी हुई देह को जीतकर जो तू अपने अधीन नही करेगा तो इस खेल में कैसे टिकेगा?

भगवान का एक क्षण के लिए भी विस्मरण न होने दो। सबके जीवन को सरल बना देनेवाला यही एक उपाय है। गुरु करने की और उससे कान फुकवाने की कोई दरकार नही है।

जो तू ऐक्यभाव से क्रीडा करने लगेगा तो तू इस ससार के शिकजे मे नही पड़ेगा। द्वैत भावना रखी तो फसा ही समझना। तू ससाररूपी खेल खेलते समय अपनी आत्म-स्थिति मे स्थिर रहकर ससार के खेल से अलिप्त रहना और विषयो का सम्बन्ध काट डालना। इस प्रकार ससार-क्रीडा करता हुआ तू एक दिन देव बन जायगा।

एक भगवान के सिवा तुम्हे कुछ जानना ही नही है। इस विषय मे जरा भी सशय रखोगे तो तुम्हें निरर्थक श्रम करना पडेगा। जिससे प्रेम उत्पन्न हो, ऐसे साधन का अभ्यास हमेशा करते रहो।

जो नारायण का स्मरण करावे, उसे ही सच्चा दाता समझो।

देव के ऊपर खूब बलपूर्वक विश्वास रखना, यही गुप्त रहस्य है। ज्ञानी-पने का जितना ढोग करोगे, व्यर्थ जायगा। सगमात्र का परित्याग करके एक देव के ऊपर के भाव को दृढ करो।

नारायण सम्पूर्ण जगत् मे व्याप्त है। इसीलिए उसे जनार्दन कहते है। तुम उस नारायण का स्मरण करोगे तो सब देव-देविया तुम्हारे पैरो पडती चली आवेगी।

जैसे हो पर-द्रव्य और पर-स्त्री की इच्छाए तो मन से निकाल ही दो। फिर भले ही इस प्रपच मे सुखपूर्वक रहो। अपने व्यवहार मे दभ को स्थान न दो। अत्यन्त शात रहो और रामनाम-रस का सेवन करो। इस विषय में आलस न करो। सारे जगत् के मित्र बनकर रहो। वाणी से अशुभ वचन न बोलो। दुर्जनो के सहवास मे न रहो। परमार्थ की साधना के लिए जैसा प्रयत्न सतो ने किया है वैसा तुम भी करो।

एक देव के सिवा दूसरी हर वस्तु और हर व्यक्ति की आशा व्यर्थ है। तृष्णा को अत्यन्त बढा डालने से कभी सुख का स्वाद नही मिलनेवाला। खूब धैर्यपूर्वक भगवान के ऊपर विश्वास रखो और सबका कर्ता-हर्ता एक देव ही है, ऐसा भाव मन मे दृढ़ रक्खो। देव तुम्हारा योग-क्षेम निभाता रहेगा, उसमे जरा भी त्रुटि न आने देगा।

हरि का नाम ओठो पर रखने के समान ही मन में भी रखते रहो। इससे समस्त जगत् तुम्हारे लिए मधुमय बन जायगा, तुम्हारी सम्पूर्ण इच्छाए खेलते-खेलते पूर्ण हो जायगी। सच्चे अन्त.करण से किया हुआ काम दीप्त हो उठता है।

: ८ :

अज्ञानी जीव और दुर्जन

जो कुछ काम होते हैं वे सब भगवान की ही सत्ता और प्रेरणा से होते हैं। मगर अविवेकी जीव को इस मर्म की प्रतीति नही होती। वह 'मैंने किया' की द्वैत भावना रखता है। इसीसे उसके पीछे 'भूत' लगे हुए है। यानी पच-महाभूतात्मक देह उसको खोजती हुई आती है। यद्यपि काल ने इस मूर्ख का गला दवा रखा है, फिर भी लगातार 'मैं-मैं' चिल्लाता रहता है।

वृत्ति, भूमि, द्रव्य, राज्य चाहनेवालो को प्रभु की प्राप्ति हरगिज नही होनेवाली है। भाडे के लोभ से वोझा ढोनेवाले कुली को वोझे के अन्दर की सार वस्तु का लाभ नही होता। किसी एक विषय का लोभ चित्त मे रखकर देवपूजा पर मन लगानेवाला आदमी पत्थर है और पत्थर की ही पूजा कर रहा है। अनेक प्रकार के कर्म करके वडे चाव से उसकी फलेच्छा करनेवालो का तमाम कौशल वेश्या के आचार की तरह है।

संसार के पाले पडे हुए जीवो को विश्राति नही। उनमे निरन्तर अर्जन व विषय-सेवन का गर्जन होता रहता है। कुटुम्वियो का समाधान करने के लिए उनको रात-दिन काफी नही होते। इसलिए उनको देव-दर्शन दुर्लभ हो गया है। ऐसे लोग आत्म-हत्यारे है।

जिस गाव के लोग सेवा-भक्तिहीन है वह स्मशान है और वे लोग प्रेत है। वे कुत्तो की तरह पेट भरते है। उन्होने अपने घरो मे यमदूतो को वसा रखा है।

भक्ति-भाव से जिनके नेत्र नही छलकते और अन्तर नही उमडता, उनके सारे वोल थोथे है और लोगो का खोखला रजन करने के लिए है।

√ काम-क्रोध दुष्ट विकारो को जैसे-के-तैसे रहने देकर तिल-चावलो की तू क्यो आहुतिया देता है ? भगवान को भजने के वजाय यह कष्ट क्यो वृथा उठाता हैं ? जिसने अक्षरज्ञान प्राप्त किया, मान-दंभ के लिए तप और तीर्थाटन करके अभिमान वढाया, दान देकर मात्र अहता का रक्षण किया, ऐसा व्यक्ति आत्म-प्राप्ति के मार्ग से भटक गया, और उसने जो कुछ किया अधर्म ही किया ।

जिसके कण्ठ मे कृष्ण नाम की मणि नही, उसकी वाणी अशुभ है, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री । जिसके हाथ मे दानवीरता का कंकण नही है, सत उसकी फजीहत करते है ।

धर्म-ठग लोग माया को ब्रह्म कहते है । वे अपनी तरह लोगो को भी भ्राति मे डालते है । देह का पालन करनेवालो को नारायण नही मिलते ।

√ मूर्खो को यह नही सूझता कि किस समय क्या करना और क्या न करना । वे दूव और छाछ की एक ही कीमत करते है ।

सोने के थाल को दूध से भरकर कुत्ते के सामने रखने से, मोतियो का हार गधे के गले मे डालने से, सूअर की नाक मे कस्तूरी लगाने से और वहरे को ज्ञान सुनाने से क्या लाभ ? सच्चा मर्म कोई विरला ही जानता है; भक्ति की महिमा साधु ही जानते है ।

जन्मान्ध को सारी दुनिया अन्धी लगती है, क्योकि उसकी स्वयं की आखो मे दृष्टि नही होती । रोगी को मिष्टान्न विषतुल्य लगता है, क्योकि उसके मुह मे स्वाद नहीं होता । जो स्वय शुद्ध नही है, उसको त्रिभुवन अशुद्ध लगता है ।

√ जो स्त्री के अधीन है, उसके जीने को धिक्कार है । उसका इहलोक या परलोक मे कही मान नहीं है । जिसका मन लोभी है,जिसके यहा अतिथि-अभ्यागत पूजे नही जाते, उसके जीने को धिक्कार है । जिसमे आलस और

निद्रा अधिक है, जो अमित-आहारी अघोरी है, उसके जीने को धिक्कार है। जिसमे विवेक वैराग्य नही है, मगर जो साधु कहलाने के लिए तिलमिलाता रहता है, उसके जीने को धिक्कार है। निन्दक और विवादी वृथा जन्म लेकर आये, वे नरक जाते हैं।

जो मुह से ब्रह्मज्ञान बोलता है और मन में धन और मान की इच्छा रखता है, ऐसे की सेवा करने से जीव को क्या सुख होगा ?

सूअर मजे से विष्टा खाता है। उसे मिष्टान्न की लज्जत का क्या पता ? उसी तरह अभक्तो को पाखड प्रिय लगता है। उन्हें परमार्थ मधुर नही लगता। कुत्ते को पचामृत खिलाओ तो भी उसका चित्त हड्डी पर रहता है। साप को दूध पिला दे, तो भी उसके मुह से वह विष होकर ही निकलता है।

गधे को महातीर्थ मे धोया तो भी वह श्यामकर्ण घोडा नही हो जाता। उसी तरह दुर्जन को उपदेश देना फिजूल है; क्योकि उसका मन शुद्ध नही है। साप को शकर डालकर पीयूष पिलाया, तो भी उसका आन्तरिक विष नही जाता।

जिसका शरीर नवज्वर से तप्त है, उसे दूध विष जैसा लगता है। उसी तरह जिसने परमार्थ का त्याग कर रखा है, उसे सचमुच सन्निपात हो गया है। जिसको पीलिया हो गया है उसे चन्द्रमा पीला दिखाई देता है। जिसे शराव पीने का शौक है, उसे मक्खन का स्वाद नही भाता।

हे प्रभो, परमार्थ रस इन दुर्जनो की सगति से नप्ट हो जाता है। जो भ्रप्ट जीव हैं वे मुह से नरकतुल्य गन्दे शब्द निकालते हैं। अच्छे मीठे अन्न को कुत्ते मुह डालकर भ्रप्ट कर देते हैं। जो सतो की मर्यादा नही रखते, वे निंद्य हैं।

जो दुराग्रही हैं, उनका झुकाव अमगल की ओर है। चित्त के सकोच से

कुछ काम नही होता। चित्त की अप्रसन्नता से कुछ करना पागलपन है। योग्य काल के विना कोई वात मान्य नही होती, ऐसा कर्त्ता ने नियम कर रखा है।

मै आशा के भवर मे पडा हुआ था। मिथ्या-अभिमान लेकर मै सव दोषों का पात्र वना था। इतने मे मेरी आख खुल गई,नही तो मै वडा दु.खी होता। इस मिथ्या देहाभिमान की चेष्टा से ही सव जग आक्रोश करता है। मरने की सुध नही। लोभ की ओर वुद्धि प्रवृत्त रहती है। उससे वह पीछे हट नही पाती। धन जोडकर मर जाते हैं। लडके उस धन के लिए लडते हैं। वे जीते-जी नारायण को याद नही करते।

ऐसे प्रेमरग मे आग लगे, जिसमें पतगा दीपशिखा पर पागल होकर अपने प्राण गंवाता है। सास के लिए वहू रोती है, मगर अन्तर का भाव भिन्न होता है। कपटी मुँह से अच्छा वोलता है मगर अन्तर का भाव और ही होता है। वृन्दावन फल वाहर से अत्यन्त कातिवान् मगर अन्दर से कड़ुवा होता है, इसलिए हाथ न लगाओ। वगुला ध्यान का ढोंग करके मछलिया मारता है। वासुरी के वजने पर जैसे साप डोलता है, उसी तरह ढोंगी लोग हरिकथा मे ऊपरी तौर पर तल्लीन हो जाते है।

सत्य की प्रतीति हो जाने पर भी लोग अपना हित न साधकर भ्रम के चक्कर मे क्यो पड़ते है ? सत्य को जानने पर भी स्वय अपना अहित करते है। हे प्रभो, यह हालत देखो। मछली मास की आशा से अपना गला फंसाती है। उसी तरह आदमी धन की इच्छा से फस जाता है। कर्म वडा वलवान है; उसके द्वारा वुरा होनेवाला हो तो होता ही है।

नाटक-तमाशो मे स्त्रियो का वेष धारण करनेवाले नटो को न देखो। जो पैसे देकर देखते है, वे दोष खरीदते है। नाटकी लोग कृष्ण व गोपी के वेष वनाकर चीरहरण का खेल करते है, इसमे मातृ-गमन सरीखा पाप है। देखो, इन सेवा-भक्तिहीन लोगो को विषय-रस का कैसा चस्का लगा है !

कितने ही शब्द ज्ञानी मनपसन्द भोजन करते है और वताते है कि 'नारायण ने ही यह भोग किया'; 'सव देव ही है, उससे अलग क्या है'—आदि। मगर सपत्ति के लिए औरो का सिर फोडने पर उतारू हो जाते है। त्यागियो के-से वस्त्र, कमण्डल और थेगडियो की गुदडी रखते हुए उनके ब्रह्मज्ञान को लज्जा लगती है। 'सव नश्वर है'—ऐसा मुह से वोलते है, मगर शाल-दुशाले, चादी-सोना, भोग-उपभोग सामग्री प्राप्त करने की इच्छाए रखते है। ऐसे ज्ञानियो की, करोडो जन्म लेन पर भी, देव से भेट नही होने-वाली।

अरे हीन, तू अपनेको हरि का दास कहलवाता है और दीनो को 'महा-राज' कहता है। तुझे शर्म नही आती ? विपयी-जनो की सभा मे जाकर कूल्हे मटकाता है ! इसके विना क्या तेरा पेट नही भरता ? पेट ने आदमी की ऐसी विडम्वना की है कि वह दीन वनकर लोगो की खुशामद करता है।

घर-घर सव ब्रह्मज्ञानी हो गए है। मगर उनका ब्रह्मज्ञान आशा तृष्णा, माया से मिश्रित होने से दाभिक हो गया है। काम-क्रोध-लोभ के विष से मिले होने से वह वहुत क्लेश देता है, निन्दा-अहकार-द्वेष से वह वहुत मैला हो गया है। ऐसे ज्ञान से कुछ भी हाथ न लगकर मूल्यवान आयु व्यर्थ जाती है।

जैसे कोई पारस देकर काच ले, उसी तरह लोग अल्प लोभ से परमार्थ की विक्री करते है। इन लोभियो ने स्वर्गलोक मे जाकर वहा दिव्य भोग भोगकर अपने पुण्य नष्ट कर डाले।

वडे-वडे कवीश्वरों से हम दूर ही रहते है, क्योंकि वे प्रासादिक कविताओ में से अश लेकर अपनी कविता मे घुसाकर स्वय कवि होने का दावा करते है। उन्हें कीर्ति की चाह होती है, ऐसे अन्धो के मुंह आखिर मे काले होगे।

जो भूत, भविष्य, वर्तमान के शकुन बताते है, उन लोगों से मुझको तकलीफ होती है, मुझे उन्हे आखो से देखना भी अच्छा नही लगता। कुछ लोग ऋद्धि-सिद्धि के साधक होते है, कुछ वाचा-सिद्धि कर लेते है, मगर ये लोग पुण्य-क्षय हो जाने पर अधोगति को जाते है।

जिसको 'पडित' कहे जाने पर खुशी हो, उसे निपट मूर्ख समझो। सर्वत्र जो समब्रह्म नही देखता, वह वेद के अर्थ के अनुसार नही चलता, इसलिए दुराचारी है। वेदों के अध्ययन से जीव और शिव को एकरूप देखना आना चाहि ।

जो मदोन्मत्त है, उसे योग्य कर्त्तव्य नही सूझता। जो नही लेना चाहिए, उसे वह ग्रहण करता है और जो अगीकार करना चाहिए, उसका परित्याग करता है। अन्धकार मे पडा हुआ दीवार की जगह दरवाजे की कल्पना करके अपना सिर टकराता है।

गागरभर दूध मे अगर शराब की एक बूद पड गई, तो फिर वह शुद्ध नही रहता। उसी प्रकार जिसका मन अहकार से गदा है, उस खल की वाणी श्रवण न करो। सुन्दरता के बत्तीस लक्षण है, परन्तु यदि नाक नही है तो सब व्यर्थ है। मक्खी जैसे अपने ससर्ग से अन्न को कभी नही पचने देती, उसी प्रकार खल की वाणी हितकर नही होती।

जैसे धीवर मछलियो को, शिकारी हिरनो को बिना अपराध मारते है, उसी प्रकार दुष्ट लोग संतो को बिना कारण सताते है। उन्हे चाण्डाल समझो। विष से अमृत की, अहकार से प्रकाश की, पत्थर से हीरे की, दुष्टो से सतो की श्रेष्ठता प्रमाणित होती है।

निंदक दुर्जन खूब हो, कारण कि उनका हमपर बड़ा उपकार है। वे साबुन या मजदूरी लिये बगैर हमारे सब पापो का क्षालन करते है। ये हमारे मुफ्त के मजदूर है। वे हमारा बोझा ढोते है। वे हमे पार उतारकर आप

नरक मे चले जाते हैं।

जो सिद्धों ने सेवन किया, वही अधम भी सेवन करता है, परन्तु फल अधिकार के अनुसार मिलता है। स्वाति नक्षत्र का जल सीप में मोती बन जाता है, कपास पर पडने से कपास का नाश हो जाता है,सर्प के मुह मे पड़े से विष हो जाता है। जो जैसा करता है, वैसा फल पाता है।

चन्दन के वृक्ष के पास सर्प रहते है, पर सु ध का लाभ अन्य दूरस्थ लोग लेते हैं। बोझा कोई ढोता है, लाभ कोई और ही लेता है। गाय के थन का कीड़ा (चिचडी) अशुद्ध रक्त का पान करता रहता है, दूध अन्य लोग ही पीते है। हे भगवान, सर्प और चिचडी जैसे जड़बुद्धियो से पत्थर होना अच्छा।

कामातुर को भय, लज्जा और विचार नही होता। काम साधन के सामने वह शरीर को असार तृण-तुल्य गिनता है। कृपण का लोभ केवल द्रव्य की ओर होता है, और किसीकी उसे परवाह नही होती। बुभुक्षित अच्छा-बुरा देखे बिना जो पाता है, वही खाता है।

शराब पीकर उन्मत्त होनेवाला नगा नाचता है और अनुचित बातें बकता है। उसके दुस्तर कर्म उसे धृष्ट बना देते है; अब समझाएं किसको ? शरीर की स्थिति बडी बलवान होती है, पागल को धर्मनीति सुनाने से क्या फायदा ? यमदूतो के डडे पडने पर होश में आ जायगा।

जिस प्रकार कौआ गगा में स्नान करके जानवरो के जख्मो में चोंच मारता है, उसी प्रकार दुर्जन को यदि उपदेश दिया तो भी वह अपना स्वभाव नही छोडता।

विष्टा-भक्षी को अमृत अच्छा नही लगता। दुर्जन का सखा दुर्जन। सत लोग दुर्जन का सग भूलकर भी न करें। उसका दर्शन भी दु खदाई है।

जिसके घर दुनिया की 'छी-छी', 'थू-थू' की ही दौलत है, उससे अपना क्या काम निकलनेवाला है ?

दृष्टि पर आवरण पडे होने के कारण जीवो को अपना धर्म नही सूझ रहा है। विषय-कामना से सव लोग भ्रांत हो गए है, अतः सच्चा मर्म वे कैसे समझें ? देखो तो, माया उन्हे कैसे नचा रही है ?

पागल के कितने ही सुखोपचार करो, उसे उनसे क्या आनन्द आयेगा ? अन्धे के आगे दीपक-नृत्य का क्या उपयोग ? भक्ति-भाव के विना भक्ति वैसी ही है।

करनी के विना कथनी-पठनी व्यर्थ है। वाणी से अमृत की मिठास का वर्णन करता है और स्वत. भूखा तड़पता है।

जिसका जीना स्त्री के अधीन है, उसे देखकर मुझे वडी पीडा होती है। उस जन्तु को मै किसकी उपमा दू ? उसकी हालत मदारी के वन्दर की-सी है। उसकी सारी जिन्दगी गधे या कुत्ते के जीवन की तरह समझनी चाहिए।

मक्खी जिस प्रकार सुगन्धित पदार्थो को छोडकर दुर्गंधित पदार्थो पर खुशी से बैठती है, उसी प्रकार अभागो को अधम कामो में ही रस मिलता है।

एक स्त्री ने अपने पेट पर साडी का डूचा बाधा, और सवसे कहने लगी, 'मुझे दिन रहे है।' गर्भधारण करने का सव ढोग वह करने लगी। उसके पेट में वच्चा नही और स्तन में दूध की वूद नही। वह स्त्री आखिरकार विल्कुल वांझ सावित हुई और लोगों में उसकी वहुत हँसी हुई। अनुभव विना केवल शाब्दिक ज्ञान की चर्चा करनेवाले पडितजन भी उस स्त्री सरीखे ही है।

कड़ुवी तुलसी के पत्तों को चाहे जितने गुड़ से चुपडें, तो भी कडुवे-के-कडुवे ही रहेंगे। नीच जातिवाला हमेशा नीच ही रहता है। उसे उपदेश देना

व्यर्थ श्रम है। विच्छू पर खूब प्रेम से हाथ फेरिये तो भी प्रेम की कद्र न करके वह डक ही मारेगा। पत्थर को चाहे जितना उबालो, नरम न होगा। सूअर को विप्टा खाना अत्यत प्रिय है। दुर्जनो का भी सूअर सरीखा स्वभाव होता है।

कुत्तो के भोकने से हाथी को सताप नही होता, भोकनेवाले कुत्तो को ही कप्ट होता है। जो दुप्ट लोग सत-साधुओ को सताते है, वे अपना मुह अपने हाथ से काला करते है।

जिनमें देहाभिमान होता है उनका जब लोग सन्मान करते है, तब उन्हे सुख होता है। उनकी पुण्य सामग्री को मान, दभ, आदि चोर चुरा ले जाते है।

नीम को शक्कर से सीचें तो भी उसका फल मीठा नही होनेवाला। उसी प्रकार दुर्जनो को कितना ही सदुपदेश दीजिये, सब निष्फल है।

मूर्ख तो केवल भार ढोनेवाले बैल है, चतुर लोग ही अन्दर की सार-वस्तु का उपभोग कर सकते है।

तेरे शरीर के माता-पिताओं को इस बात का ज्ञान नही है कि तेरा सच्चा हित किसमें है? इसलिए वे तुझे प्रापचिक व्यवहार की शिक्षा देते है।

ज्ञान बोझ से जिनका कलेजा दब गया है, वे केवल शब्दो की ही माथा-पच्ची किया करते है और उनके स काम का अन्त ही नही आता। अनुभव-रहित शब्द रसहीन होते है।

पहले बीज बोना, फिर सीचना, फिर ईश्वर पर भरोसा रखकर जो फल मिले, उसे लेना। ऐसा न करके जो कोई फल की आशा रखकर ईश्वर की मिन्नते करते रहते है, वे आखिरकार गे जायगे और कुछ न पायगे।

जो मनुष्य हाथ में माला लेकर, गोमुखी मे हाथ डालकर, जप करने के

वहाने केवल डाढी ही हिलाता रहता है और मन मे दूसरे लोगों की निन्दा का विचार करता रहता है, वह केवल माला के मनके टपकाता और गोमुखी को हिलाता ही रहता है। उसे यम की सजा भोगनी ही पडेगी।

यह शरीर-स्थल वडा वाधा-पूर्ण है, फिर भी यहा जो फसल चाहे पैदा कर सकते हैं। ऐसा होते हुए भी जो कोई सकोच-वृत्ति रखकर पडे रहें तो समझना कि वे अपनी जीव दशा से चिपटे रहना चाहते हैं।

अपने पास ही स्वरूप सुख होते हुए भी क्षुद्र लोग अज्ञान के कारण भ्राति मे पडे रहकर दुःख भोगते हैं। दिशा-भ्रमित गलत रास्ते चल पडता है। मेरा यह कथन निर्णयात्मक और स्वानुभव गम्य है।

देहाभिमानवालों मे धैर्य, शाति और निर्मलता नही होती। ऐसे जीव निर्वल ही होते हैं। वे लोग त्रिविध ताप से तपते रहते हैं।

'मैं हरि का दास हूँ' यह कहने के लिए जीभ नही हिलती और व्यर्थ वकवास की दुर्गंध फैलाया करती है।

अपनी प्रशसा अपने मुह से करना शोभा नही देता। फिर भी वहुतेरे अपना वड़प्पन लोगो को दिखाते फिरते है।

प्राणियो के प्रति द्वेष-बुद्धि रखना, मन में निष्ठुर भाव रखना, और अधिक वाद-विवाद करना—ये तीन अपलक्षण जिसमे हो उसे अभक्त जानना।

पैसे के लिए जो हरिकथा करता है, उससे मैं पूछता हूँ कि ऐ पापी, पेट भरने के लिए तुझे हरिकथा करने के सिवाय और कोई धधा ही न मिला?

अपनी देह का पालन-पोषण करता जाय और मुंह से ज्ञान की वाते

छाटता जाय, ऐसे की सूरत भूल से भी दिखाई न पड़े तो अच्छा। जिसके स्वभाव मे सत के लक्षण प्रकट न हुए हो, ऐसे लोग क्या औरों को उपदेश देने योग्य कहे जा सकते हैं ?

जो अपनी इद्रियो का नियमन न करें और मुह से नामोच्चार करें, इससे उनका क्या लाभ होगा ? कीर्त्तन करते समय जैसा मुह से बोलें, वैसा आचरण भी करना चाहिए।

जैसा अपना जीव है, वैसा दूसरे प्राणियो का भी जीव है। पापी लोग यह बात नही जानते और दूसरो के गलो पर छु ी चलाते है। सब प्राणियों के हृदय मे जीवरूप से नारायण रहते है। पशुओ के हृदयो में भी नारायण का वास है। हत्या करनेवाले अधोगति मे ही जायगे और दारुण दु ख भोगेंगे।

कोई अपना कुरता फाडकर उसका कवल बनाये, वह जैसा हास्यास्पद है, वैसा ही दूसरे की कविताओ मे से कर्त्ता का नाम निकालकर उसकी जगह अपना नाम घुसेड ेनेवाला है।

दडित लोग अपनी विद्या को विकाऊ माल गिनकर उसके द्वारा लोगों का केवल मनोरजन करने की चेप्टा करेंगे तो उनको परमार्थ-सबधी कुछ भी फल नही मिलेगा; परन्तु जो अपने मन से सब प्रकार का अभिमान दूर कर देते है और अपनी त्रुटियो की ओर ध्यान देकर नम्र बने रहते है, वे ी परमार्थ-फल का स्वाद चखते है।

जो चित्त के साथ चित्त मिल गया तो सबकुछ मिल गया समझना। ऐसा न हो तो किसीकी भी सगत करना व्यर्थ है। पानी और पत्थर का योग हो तो भी पत्थर का अतरग पानी से न भीगता है न नरम होता है।

बीबी-बच्चो को छोडकर मूड मुडाकर संन्यासी तो हुआ, परन्तु याद

983

अन्त.करण.से तृष्णा का क्षय न हुआ, तो संन्यासी हो जाने से क्या सधेगा ? जो तृष्णा-रहित.हो.गया है, वह ससार मे रहते ए भी अलिप्त रह सकता ह।

जो प्रपच का भार ढोता फिरता है, वह देव को पहचान ही नही सकता। जिसकी वुद्धि स्थिर न हुई वह चिन्ता में डूब-मरता है। जो तृष्णा का दास और लोभी होता है नारायण उसकी वुद्धि को स्थिर नही होने देता।

✓ श्रद्धा विना देव का मर्म समझ मे ही नही आता। भक्ति-रहित और धैर्य-रहित लोग जैसे-के-तैसे ही रहते हैं।

: ६ :

भगवान से प्रार्थना

जो सतो के दास हो, उनके दासो का मुझे दास बना दो। हे हरि, फिर चाहे कल्प-पर्यंत मुझे गर्भवास करना पड़े, नीच कर्म करने का भी प्रसग आया तो मै करूंगा, मगर मुख में तुम्हारा नाम रहे। तुम्हारी सेवा में ही मेरे सकल्प समा जायें।

जिसका चित्त सदा दहकता रहता है और जिसका जी हमेशा क्षुब्ध रहता है, उसके मुझे दर्शन न हो। वह जीता भी मृतक के समान है। दुर्वचनो की गदगी से उसकी वाणी अमगल हो गई है। परतत्त्व और परोपकार को वह नही जानता।

हे देव, मै ससार-ताप से तप गया हूं। कुटुम्ब की सेवा कर-करके भी तप गया हूं। मैने बहुत-से जन्मो का बोझा ढोया है। सबसे छूटने का मुझे मर्म नही सूझता। मै अन्दर और बाहर के चोरो से घिर गया हूं।

बुरे समय के चक्कर मे फंसकर बलवान भी बंदी हो जाता है, कभी दाता को भी याचको की शरण जाकर दान मागना पडता है। हे भगवान्! क्या आप यह नही जानते? मुझे भी आपको कहना पड़ेगा?

मुझे मान नही चाहिए। उससे मुझे जरा भी सुख नही मिलता। देह के सुखोपचार से मेरा शरीर आरामतलब बनता जाता है। मिष्टान्न मुझे विष की तरह कडुवा लगता है। कोई मेरी प्रशसा करता है तो मुझसे वह सुनी नही जाती। तू मुझे ऐसा ज्ञान दे जिससे मै तुझको पा सकू।

आजतक आयु व्यर्थ गई। यह बडी हानि हुई है। हे हरि, अब तो ड़

कर आ। बैठा हुआ क्या देखता है ? मेरा-तेरा करते-करते उम्र बीत जायेगी और आखिर मुह मे मिट्टी पडनेवाली है। मन क्षण की भी फुरसत नही लेने देता; वह भव नदी में डुबाता है। विषय-रूपी लुटेरों ने मुझे लूट लिया है। हे प्रभो, मैं तुम्हारी शरण आया हूं, अब तुम मुझपर कृपा करो।

दंभ से कीर्त्ति मिलती है, पेट भरता है, मान मिलता है; मगर यह स्वहित का कोई कारण नही है। ज्ञान का अभिमान रखने से तेरे चरण मुझसे दूर हो जाते है। देह का पालन-पोषण करने से विकार तीव्र होते है। लोक-लाज या लोगो का लिहाज रखकर मै अपना घात स्वय कैसे कर लू ? हे प्रभो, मुझे ऐसा सरल उपाय बता कि आखें तेरे चरणारविन्द देखें।

पहले के ऋषि क्या अज्ञानी थे ? उन्होने इस जग का त्याग किया। आठो सिद्धियाँ उनकी सेवा में तत्पर रहती थी, फिर भी ससारी जनो की बुद्धि के अनुसार नही चले। जिन्होने कद, मूल, पत्ते खाकर शरीर का पोषण किया और निरन्तर वन मे वास किया, वहां मौन ले, आखें बन्द कर शात होकर बैठे। हे अनन्त, ऐसी ही मेरे चित्त की स्थिति कर दे और लोगो को मुझसे दूर रख।

मेरी ऐसी बुद्धि मे आग लग जाय कि मै तुझमे समा जाऊँ। इस ऐक्य-बुद्धि का निषेध ही अच्छा है। तू स्वामी मै सेवक; तू ऊँचा मै नीचा। यही कौतुक करना। इसे टूटने मत देना; कारण कि जल जल को नही पीता, वृक्ष अपने फल को नही खाता; भोक्ता अलग होता है, वही उसकी मिठास का अनुभव लेता है। हीरा कुन्दन मे शोभा देता है, गहने के रूप को सोना शोभता है। गर्मी मे छाया सुख देती है। बच्चो के मिलन से मा के स्तनो से दूध की धार छूटती है। एक-से-एक ही मिले तो उस समय क्या सुख होगा ? अलग रहने मे ही मेरा यह चित्त हित मानता है। मै मुक्त नही होऊंगा, ऐसा मैने निश्चय कर लिया है।

तू बडा उदार है, कृपालु है, अनाथो का नाथ है। जो तेरी शरण में जाता

है उसकी वात सुनता है। उसका सारा वोझ तू अपने सिर पर लेकर चलता है। जो मन, वचन और काया से तुझसे अनन्य रूप हो गए है, उनके आवाज़ देते ही तू उनके नज़दीक आकर खडा हो जाता है, और उनकी हर इच्छा पूर्ण करता है। वे मार्ग पर चलते है तव तू उनकी सभाल करता है और कही काटे-ककर सामने आयें तो तू अपने हाथो से उन्हे दूर करता है। तेरे दासो को चिन्ता नही है; क्योकि सव तरह से रक्षण करनेवाला तू उनके घर में रहता है।

हे देव, मैं कीर्त्ति, लोक, दभ, मान लेकर क्या करूं ? तू मुझे अपने चरण दिखला। ज्ञान के वडप्पन का भार लेकर तो मै तेरे चरणो से अलग जा पडूगा।

मेरे प्रभो, मुझे लघुता दो। चीटी को चीनी के दाने और ऐरावत रत्न को अकुश की मार! जिसमे वडापन है उसे कठिन यातनाए भोगनी पडती है। इसलिए छोटे से भी छोटा होना अच्छा है।

हे देव, यदि आप वेद-पुरुष है, तो वेदो ने आपके विषय में 'नेति' शब्द का प्रयोग करके आपको भिन्न क्यो वतलाया ? हे अनन्त, तुम सर्वगत, सर्व-व्यापी होकर किस कारण मुझसे विलग रहते हो ? यज्ञ के भोक्ता आप है तो वह सफल क्यो नही होता ? उसमें कुछ कमी रह जाने से क्षोभ क्यों होता है ? सव भूतो के अन्दर अगर आप ही है तो यह वाहरी भेद क्यो दिखलाया ? तप, तीर्थाटन, दान के आप ही मूर्त्तिमन्त स्वरूप है, तो इससे अभिमान क्यो होता है ? आपके दरवाज़े पर खडा होकर ये आवाज़ें लगा रहा हूं, क्षमा करना।

रवि का प्रकाश ही रात्रि का नाश करता है। वह न हो तो वहुत-से दीपक जलाने से रात्रि का नाश हो जायगा क्या ? उसी प्रकार सर्वश्रेष्ठ हरि ही मेरे प्राणो मे वसे। इससे अनुभव में न आनेवाली वातो का अभी अनुभव होने लगेगा। राजा के साथ होने से कोई वाधा नही आती और विभिन्न अधिका-

रियो से प्रार्थनाएं नही करनी पडती । इससे जन्म आदि वन्धनो का नाश होगा, क्योकि निकटवर्ती हरि पर प्रीति है ।

हे प्रभो, ऐसा करो कि किसीसे वोलने का प्रसग न आये, क्योकि यह सव उपाधि है । एक तुम्हारे नाम विना सव श्रम व्यर्थ है । मन के अन्य सकल्प होने से पाप-पुण्य पैदा होता है । इसलिए वाणी नारायण के ही निकट विश्राति ले ।

हे प्रभो, मेरी एक विनती सुनो । मुझे मुक्ति नही चाहिए; मुझे वैकुण्ठ का वास नही चाहिए; उससे सुख का नाश है । कीर्त्तन के समय हरिनाम-चितन का रस अपूर्व है । हे मेघश्याम, अपने नाम की महिमा का तुमको पता नहीं है, मुझे है, इसीलिए लेना मुझे प्रिय लगता है ।

आजतक जो हुआ सो हुआ । भविष्य मे मैं अच्छा मधुर भाषण करूंगा । अव मेरे अपरावो को आप मन मे न लाइये । आपके नाम का चिन्तन करने में तनिक भी वाधा न पड़ने ीजिए ।

हे कृपावंत, तेरी माया मेरी समझ मे नही आती । जन्म देनेवाला कौन और जन्म लेनेवाला कौन ? दाता कौन और मांगनेवाला कौन ? भोक्ता कौन और भुगतानेवाला कौन ? रूपवान कौन और कुरूप कौन ? सव जगह केवल तू-ही-तू व्याप्त है । तेरे सिवा कुछ नही है ।

✓ हे भगवान, मुझे यही दो कि मेरे मुख मे नाम हो और सत्सगति मिले । मुझसे वहिरग सेवा न लेकर मेरी भावशुद्धिरूपी अन्तरग सेवा लें ।

हे दातार, अगर सारी दुनिया मिल जाय तो भी मुझे पर्याप्त नही लगेगी । आदि-से-अन्ततक मुझसे भूल हुई, यह प्रतीति मुझे नही होती ।

हे देव, मुझमे और तुझमे कोई भेद नही है । जो कुछ है वह तू और तू-ही-तू है । मै पूर्णरूपेण तेरे स्वरूप के अन्दर हूँ । मेरा समस्त वल तेरा ही है ।

हे दातार, नर-स्तुति और कथा-विक्रय मेरे द्वारा न होने दो। पर-स्त्री और पर-धन की इच्छा मेरे मन में न आने दो। लोगो का मत्सर और सतो की निन्दा मुझसे न होने दो। देहाभिमान न होने दो। अपने चरणो की विस्मृति वार-वार न होने दो।

हे देव,यदि मै मायाजाल में पड गया, तो तुमको भूल जाऊंगा, इसलिए मुझे सतान न दो। मुझे व्य और भाग्य न दो, इससे जी का उद्वेग वढता है। मुझे फकीर सरीखा करो जिससे रात-दिन जीभ पर हरि का नाम रहे।

मेरे नेत्र पर-स्त्री को माता-समान न देखें तो आखो की मुझे जरूरत नही है। मेरे कान यदि किसीकी भी स्तुति या निन्दा सुनने मे कप्ट न माने तो तू उन्हे वहरा कर दे। तेरा विस्मरण हो जाय तो प्राणो के रहने से क्या लाभ ?

वीज के पेट मे वृक्ष रहता है और वृक्ष के पेट मे जैसे वीज रहता है, उसी प्रकार,हे देव, हम दोनो एक-दूसरे के अन्दर समा जाते है। पानी में तरगें उत्पन्न होती है और फिर वे तरगे पानी में ही समा जाती है। विम्व और प्रतिविम्व दोनो ही एक स्थान मे लय हो जाते है; उसी प्रकार हे देव, आप और मैं भी एक दूसरे में लय हो जाते है।

हे देव! तू कल्पवृक्ष है, मै जो इच्छाएं करता हू, उन्हे तू पूरी करता है।

हे देव! आपके सिवा मैं किसीका आश्रय नही लेनेवाला। मैंने भय, लज्जा और शका का त्याग कर दिया है।

हे देव! वेद और शास्त्र से तुझे कोई नही समझ सकता, परन्तु भाव और भक्ति ारा तू निकट ही खडा दीखता है। शरणागत भक्तो के तू आगे-आगे चलता हुआ उन्हे सच्चा रास्ता दिखलाता है और उन्हे भटकने नही देता। तू एक होते हुए भी अपने आनन्द के लिए नाम रूपात्मक जगत् का विस्तार करता है और उसमे आनन्द से लीला करता है।

हे राम ! तू परमानन्द स्वरूप है, तू परम पुरुषोत्तम है, तू अच्युत है, अनन्त है, उपाधियो का हरण करनेवाला है, अविनाशी है, अलक्ष्य है, पर-ब्रह्म है, लक्ष्मी का स्वामी है, मगल-स्वरूप है, शुभदाता है।

हे प्रभो, तुझसे यही मागता ँ कि तू मुझे संतो के हवाले कर दे। तू उदार हो जा और मुझे सतों के चरणो के आगे ले जाकर रख दे।

: १० : .

विचार-मौक्तिक

विवेकपूर्वक भोग भोगने से त्याग होता है। अविचार से भोग का त्याग त्याग न रहकर भोग बन जाता है। जिन कर्मो से देव-मिलन मे अन्तराल हो, वे पाप कर्म है।

✓ टूटा हृदय नही जुडता।

✓ पूर्वोपार्जित पाप हमारे हित मे बाधक होते है।

✓ अन्न मिलना, मान होना, द्रव्य मिलना—सब प्रारब्ध के अधीन है।

अभ्यास से असाध्य भी साध्य हो जाता है।

मुख्य धर्म है देव-चिन्तन, आदि-से-अन्ततक शूर रणागण मे अपना पराक्रम दिखाता है, भीरु अपने घर बैठा कापता रहता है।

जब सचमुच देह मे दैवी शक्ति का सचार होगा, तब क्या कमी रहेगी ?

समाधान ही पूजा है।

जबतक रणभूमि नही दीख पडती, तभीतक युद्ध की बाते करना आसान है।

मिष्टान्न आदि विलास के भोगो से अपनी देह पुष्ट करना अधमो को ही भाता है। देह-रक्षण जीव के हाथ में है क्या ? मालूम भी न होगा और यह क्षण-भगुर शरीर एक दिन चला जायगा।

ब्रह्म कर्माकर्म से निर्लिप्त रहता है। सहज ब्रह्मभाव की जगह पाप-पुण्य

को स्थान नही है ।

आशा के निरसन मे ही हित है ।

अनुताप से दोष निमिष-मात्र मे चले जाते है, मगर वह अनुताप आदि-से-अन्ततक रहना चाहिए । अनुताप मे नित्य स्नान करना ही प्रायश्चित्त है । अनुताप से पाप स्पर्श नही करता ।

बड़े-छोटे का भेद-भाव दया-धर्म का नाशक है ।

जान दिये विना लाभ मुफ्त मे नही हो जाता । रण मे शूर के जान देने से दूना लाभ होता है ।

आधार के विना बोलना मानो दादी-मा की कहानी है । जबतक भगवान की पहिचान नही होती, तबतक सब व्यर्थ है ।

शीशा अगर हीरे की तरह चमके भी तो भी वह हीरा नही हो जाता । उसी तरह दूसरे को देखकर, सीखकर डौल दिखाया भी तो वह सच्चा नही होता ।

प्रभु बहुत बडा है, मगर भक्तो के भाव के कारण छोटा होकर उनके दिलो मे रहता है । भक्ति के जोर से जैसा कराये वैसा करके भक्तो की इच्छाएं पूरी करता है । जगत का दान करनेवाला महान् देवभक्तो से तुलसी के पत्ते और पानी मागता है ।

वाणी बोलती है मगर अनुभव दुर्लभ है ।

यथार्थ बात न कहकर अच्छे लगने के लिए जो औपचारिक भाषण करते है, वे अघोर नरक भोगते है ।

सच्चा शूर ही मान पाता है । अन्य सैनिक केवल बोझा ढोते है ।

जिस दिन सत घर आयें, वही हमारी दिवाली-दशहरा है।

इस भवसागर से मन ही पार उतारता है, और मन ही चौरासी लाख योनियो के बंधन मे डालता है।

सतो की महिमा बहुत दुर्लभ है। हम स्वय सत हो जायं, तभी उनके माहात्म्य का पता लग सकता है।

जीवन को हरि के अर्पण करने से सत-पद मिलता है।

सब का ल सचमुच मिलता है, उसे पाने के लिए किसीको बल-प्रयोग की आवश्यकता नही होती।

छाया की अभिलाषा मे क्या ह ? जल म पड़े तारो के प्रतिबिम्ब को मोती समझकर हस चोच मार-मार कर जान गंवाता है।

सब आगमो (शास्त्रो) का मथन करके निकाला आ सच्चा नवनीत भगवान है।

जो सतो को प्रिय है वह काल का भी काल है।

अभ्यास से सब कार्य सिद्ध होते ह। कोई ऐसा क न काम नही है जो अभ्यास से सिद्ध न हो जाय, मगर जबतक अभ्यास करने का निश्चय नही किया जाता, तबतक कठिन है। रस्सी की रगड से पत्थर तक घट जाता है। अभ्यास से वि तक को खाकर पचाया जा सकता है। मा के पेट में ी महीने के बालक के रहने योग्य जगह शुरू में होती है क्या? लेकिन धीरे-धीरे उसके रहने योग्य जगह हो जाती ह।

जबतक विश्वम्भर की पहचान नही हुई, तभीतक मित्रो और भाई-बन्दो का प्रेम है। नारायण, विश्वम्भर, विश्वपिता का अनुभव होते ही ज त

मिथ्या दीखने लगेगा। सूरज जबतक उगा नही तबतक ही दीपक का काम है। सूर्य के प्रकाश मे वह यो ही निस्तेज हो जाता है। देह-संबंध तो प्रारब्ध से होता है, अपना काम तो नारायण से ही रहता है।

लघुता अच्छी, क्योकि उस हालत मे कोई वैर नही धरता।

भोजन देखने, कहने और खाने मे अन्तर, बड़ा अन्तर है। हीरे का मूल्य पारखी ही जानता है, मूढ को तो वह चकमक पत्थर सरीखा लगता है।

योगियो की संपदा त्याग और शाति है। इससे दोनो लोको मे कीर्ति और मान की प्राप्ति हो जाती है। तृष्णा से जीव 'कष्टी' होता है। सर्व कर्त्तव्य बुद्धि का त्याग करने से जीव शिवपद को भोगता है।

मन में धैर्य और क्षमा न हो तो जटा रखाना और भस्म लगाना ऐसी देह विडम्बना है, जैसे मुर्दे का शृगार करना।

चित्त मे शाति रखने से सब सुखो की प्राप्ति होती है।

सत्य बोलने के लिए हरि की प्राप्ति व्यर्थ है। एक सत्य बोलने से ही अत्यत परोपकार होता है। कुवासना का मल छोड़ देने से मन शात हो जाता है।

जो गुरु शिष्य से सेवा न लेकर उसे देव समान मानता है, उसीका उपदेश फलता है, शेष के उपदेश से दोष मात्र लगता है। जो देह-भाव से उदासीन है, उसीको सच्चा ब्रह्मज्ञान है।

आशा, तृष्णा, माया ये अपमान के बीज है, इनका नाश करने से आदमी लोकपूज्य हो जाता है।

जो जैसे ध्यावेगा, भगवान वैसे ही रूप मे दर्शन देगा। जीव जो-कुछ

सेवन करता है, वह सबकुछ हरि भोगता है।

किसी प्रकार का सशय रखना ही दोष है। मन के भले-बुरे सकल्पो से ही पुण्य-पाप होता है, इसलिए उत्तम सकल्प ही शुभ है। चित्त शुद्ध करने में ही कल्याण है।

देव का कृपा करके वोलना ही प्रसाद है। इस आनन्द से आनन्द की वृद्धि करनी चाहिए।

जिसने आशा का अन्त कर दिया, देव उसीके अन्दर निवास करता है।

जिसके दिल में आशका नही है, वही मुक्त है; और जिसके चित्त में लज्जा, चिन्ता, मोह है, वह वद्ध है। जो एकात सेवन करता है, वह सुख-शाति पाता है और जो लोक मे दभी वना फिरता है, वह दुखी रहता है। दुःख से छूटकर सुख प्राप्त करने का उपाय छोटा-सा ही है, मगर यह जीव उसे न जानकर इधर-उधर भटककर दुखी होता है।

जो सव जीवो के प्रति नम्र हो गया है, उसने अनन्त परमात्मा को अपने हृदय में वन्द कर लिया है। इस प्रकार श्रीरग को जीतने मे ही सच्ची शूरता है। सवके प्रति नम्र होना ही पूर्णत्व का कारण है। पानी पतला होने से तल तक जाता है।

जो अनियमित है, उसे दु ख व कष्ट होता है।

नम्रता ही भवसागर पार करने का सारभूत सावन है। वडप्पन का भार सिर पर लेगा तो सागर मे डूव जायगा।

जो आशा से वंधा हुआ है उसे सारे जगत् का दास समझना चाहिए। जो उदासीन है, वह सव लोगो का पूज्य है। जानकार के पीछे उपाधिया लगती है और अनजान को पका-पकाया खाना मिलता है।

मन पर अकुश चाहिए। नित्य नया दिन जागृति का होना चाहिए।

जो जैसे वोले वैसे चले, वह मनुष्य अमोल है।

जिसका रखवाला देव है, उसे कौन मारेगा ? काटो से भरे जगल मे वह घूमे, तो भी उसके पैर मे काटा नही लग सकता। न उसे अग्नि जला सकती है, न पानी डुवा सकता है। विप उसके लिए अमृत हो जाता है। न वह रास्ता भूलता है न किसीके फदे मे पडता है। उसे कभी यम-वावा नही होती। उस-पर आनेवाली गोलियो और वाणो से उसे नारायण वचाते है।

देव ने जव कुछ करना ठान लिया, तो फिर वहा किसीका कुछ वस नही चल सकता। हरिश्चन्द्र और तारा रानी से डोम के घर पानी भरवाया। भगवान पाडवो के सहायक थे फिर भी उनका राज्य नष्ट करा दिया। इसलिए निश्चल रहकर देखिये कि सहज ही क्या-क्या होता है।

वाहरी वेष धरने से पेट भरा जा सकता है; परन्तु अन्त करण शुद्ध करके कमाई किये विना परमार्थ नही होता।

तीर्थयात्रा, व्रतादिक फलाशा के करने से मुक्ति नही मिलती। भगवान् की शरण गए विना सव साधन व्यर्थ है।

व्यभिचार के निपेधवाचक शब्द सुनकर पतिव्रता को आनन्द होता है, परन्तु उन्हींसे व्यभिचारिणी के मन को धक्का लगता है। अशुद्ध आचरण मे आग लगे; जग मे शुद्धपने से रहना ही भला है। धर्माचार सुनकर सदा-चारियो को आनन्द होता है, दुराचारियो को दुःख। युद्ध से शूर को उल्लास होता है, नामर्द का मानो वह मरण-प्रसग ही होता है। आग से शुद्ध सोना अधिक उज्ज्वल होता है, हीन काला पड़ जाता है। जो घन की मार से न टूटे, वही हीरा है।

जो स्वयं कुमार्ग मे जाकर दूसरे को सुमार्ग दिखाये, उसका जो उपकार

न माने वह अद्वितीय मूर्ख है। जो स्वय विप-सेवन करके जाने की अवस्था मे दूसरे को विप-सेवन न करने का उपदेश देता है, जो स्वय डूवता हुआ अगाव पानी की सूचना देता है, उसका उपकार मानना चाहिए। कहनेवाले के अवगुण छोड़कर गुण ग्रहण करने च.हिए।

थीर्यो में जाकर तूने क्या किया? ऊपर-ऊपर से चर्म का प्रक्षालन। जैसे कटु-वृन्दावन फल को या करेले को शक्कर में घोकने से भी उसकी कटुता नही जाती, उसी प्रकार तीर्थयात्रा से अन्त.करण के मल नष्ट नही होते।

सेवक को स्वामी की आज्ञा का पालन प्रणोत्सर्ग होने तक करना चाहिए। स्वामी से भूल होने पर समय देखकर व वज्रभेदक उपदेश से भी उसे सुनाना चाहिए। वही सेवक कहलाने योग्य है। ऐसे ही सेवक को स्वामी का अन्न खाने का अविकार है।

सात्त्विक लोग अल्पभापी होते है और मक्कार वड़-वड़ करनेवाले।

देव को सवका पालन-पोपण करना पड़ता है, और हमें तो अपने खाने की भी चिन्ता नही करनी पड़ती। देव को लोगो के पाप-पुण्यो का विचार करना पडता है, हमारे लिए सव लोग भले है। देव के पीछे जग का उत्पत्ति-संहार लगा हुआ है, हमें थोडा-बहुत भी काम नही करना पड़ता ; देव के पीछे वडा काम-धवा लगा हुआ है, हम हमेशा खाली है—विचार करें तो हम सव प्रकार से देव से अच्छे है।

भोगो को कृष्णार्पण करके भोगने से भोग त्याग स्वरूप हो जाता है। इन भोगो का भोक्ता देव है। यह निश्चित रूप से जानकर आपके अलग हो जाने से इसी देह में भगवान की प्राप्ति हो जाती है।

देव उदार है। वह थोड़े का वदला वहुत देता है।

देव अपने दासो का सेवक वनता है।

पानी सज्जन, दुर्जन सबकी तृष्णा शात करता है। वह किसीको बुलाने नही जाता, न किसीको अपने गुण सुनाता है।

भिन्न-भिन्न अलंकारो में रहते हुए भी सोना एक ही है। स्वप्न की लाभ-हानि जागने पर मिथ्या हो जाती है।

कौआ मृत जानवरो का मास खाता है। तीतर कंकर और हस मोती खाता है। जिसकी जैसी पसद है, जिसका जैसा भाव है, नारायण उसे वैसा ही देता है।

जहा भक्तराज रहता है, वहा स्वय भगवान रहता है। इसमें कोई संदेह नही।

परमार्थ का सच्चा मर्म पांडुरंग के विना कोई नही जान सकता। कोई भी कला सिखाई जा सकती है, परन्तु प्रेम किसीके भी हाथ में नही है।

जैसी वुद्धि, वैसी सिद्धि।

जिसके पैर में जूता तक नही है और राजा से वैर करता है, उसे धिक्कार है। चीटी के मुह मे हाथी का आहार डालने से उसका भार वह उठा नहीं सकेगी और मर जायगी। इसलिए अपनी शक्ति का विचार करके शूरता से तीर छोडना चाहिए।

पात्रापात्र का विचार किये विना भूखे को अन्न देना चाहिए।

अपना जीव देवार्पण करने का नाम है देव-पूजा। इसके विना सव बकार है। जैसा वीज, वैसा फल; जैसा कारण, वैसा कार्य। जो जितना नम्र होगा, ईश्वर इतना ही उसे मान देता है।

भक्त और भगवान में भेद नही है। अग्नि के संसर्ग से लकड़ी अग्नि हो

जाती है।

प्राणिमात्र के प्रति हमे निर्वैर होना चाहिए। यही सर्वोत्कृष्ट साधन है। नारायण तभी अगीकार करेगा। इसके विना सारी वडवड व्यर्थ है। चित्त के निर्मल होने पर ही सव काम होते हैं।

जवतक घी मे छाछ है, तवतक वह कड-कड आवाज़ करता है, शुद्ध होने पर निश्चल शात हो जाता है।

तीर्थयात्रा की अपेक्षा जहा रहते हो वही अधिक पुण्य किस प्रकार सपादन किया जाता है, इस रहस्य को जानना चाहिए। जिनकी एक घड़ी भी व्यर्थ नही जाती, ऐसे भक्तो की सगति अत्युत्तम है। जो नाम-चिन्तन करते है और कराते है, वे स भव-नद को पार करने की नौका है। ऐसे परोपकारियो के चरणो पर मेरा मस्तक है।

सोना ही सत्य है, अलकार मिथ्या है।

यदि हमारा अहकार नष्ट हो जाय तो नारायण हमारे घर आकर रहते है।

सारे जग को विष्णुमय मानना वैष्णवो का धर्म है, परन्तु वे उसे नही जानते।

विषयो से मन परावृत हुआ कि शुद्ध आत्मज्योति दिखाई देने लगती है।

अच्छा और वुरा वुद्धि की कल्पना है, मूल आकृति में भेद नही है, एक पालकी उठाता है, एक उसमे वैठता है, सवको कदम-कदमपर अपने-अपने कर्म भोगने पडते हैं। एक के समान दूसरा नही है; भिन्नता प्रकृति का स्वरूप है।

उदासीन का देह ब्रह्मरूप है। उसे पुण्य-पाप नही लगते। उसके अन्दर अनुतापरूपी अग्नि की ज्वाला जलती रहती है। अहभाव ने ही अन्त करण को गन्दा कर रखा है। जवतक आकुलता नष्ट नही हुई तवतक चित्त वद्धा-वस्था मे है।

आशा छोडकर हम वन्धन का पाश तोड देंगे। अन्य वातो का वोझ सिर पर लेने से निज पंथ दूर पड जाता है। उस जीने से क्या लाभ, जिससे ईश-प्राप्ति में वाधा पड जाय ?

जिसकी संगति से दु.ख होता है, उससे प्रीति कैसे हो सकती है ?

वुद्धिहीन को उपदेश देना अमृत को विष वनाना है। आलसी व्यक्ति का हृदय खराव होता है, जैसे कोई शव कामनाओ से अलिप्त हो।

भगवान के चरणो मे प्रीति रखने से सवकुछ प्राप्त होता है। एक-दूसरे की मदद करके हम सव अच्छा मार्ग अपनाये।

संसार असार है, भगवान ही सार है। ईश-चिन्तन के अतिरिक्त सव श्रम व्यर्थ है।

सव भूतो मे श्री नारायण साक्षी रूप रहते है, फिर भी अवगुणी का दंडन और गुणी का पूजन होता है।

जिससे अपने चित्त को समाधान हो, ऐसा स्वहित हम स्वयं ही जानें। वहुत-से रग-रूपो मे माया फैली हुई है। उसकी इच्छा कुठित करना ही अच्छा। विश्वम्भर को अनन्य भक्ति से चित्त समर्पण करके नि शव्द रहने से ही उसकी पूजा होती है।

आमिष की आशा से मछली काटा निगलती है और मरती है। आशा ने ही उसके प्राण लिये। अरे देखो! वकरा कसाई से कैसा मोह रखता है!

काम-क्रोध को शांत करके सब जीव-जन्तुओ को नमस्कार करने का नाम ही भक्ति है ।

सर्वभोक्ता नारायण है, मैं नही, ऐसा जिसकी वाणी बोलती है, उसके सब भोग नारायण को अर्पण होते हैं । भोजन करते समय अथवा और कार्य करते समय 'सबकुछ भगवान के अर्पण हो' ऐसा कहना चाहिए । इसमें कुछ खर्च नही होता, परन्तु ये शब्द देव को प्रिय है ।

सज्जनो का स्वहित इसीमे है कि लोगो के लिए कल्याणकर नीति, जैसी स्वय को प्रतीत हो, कहें ।

(परमार्थ का) अपार भडार भरा है, कितना भी खर्च करने पर खाली नही होता ।

जो मान चाहता है, उसे अपमान मिलता है । यह सिद्ध है कि आशा अन्त मे नाश करती है । इच्छानुसार फल मिलता कहा है ? फिर भी वासना ही भिखारी बनाती है । किसी ढोर का नाम राजहंस रख देने से क्या होता है ?

दूध में मक्खन है, यह सब जानते है, परन्तु जो मथन जानते है, वही उसे अलग कर पाते हैं । लोग जानते है कि काठ में अग्नि है, परन्तु घिसे बिना वह जलाने का कार्य कैसे करेगी ? मलिन दर्पण को साफ किये बिना मुह कैसे देखा जा सकता है ?

जो देव हो गया है,उसे सब जगदेव स्वरूप लगता है । यहा अनुभव चाहिए, कोरा शब्द-गौरव नही ।

छेनी से छील-छीलकर तैयार हुई देवमूर्त्ति देवपने को प्राप्त होती है, परन्तु यदि वह बीच में ही टूट-फूट जाय, तो कोई उसकी पूजा नही करता ।

सूर्य अच्छे-बुरे सब रसो का शोषण करता तो है, परन्तु उनका कोई गुण-दोष उसे नही लगता। वह स्वय सबसे अलिप्त रहता है। ब्रह्मज्ञान भी ऐसा ही होता है।

अग्नि किसीको बुलाने नही जाती कि मेरे पास आकर अपनी ठड दूर कर लो। पानी भी किसीसे नही कहता कि 'मुझे पीओ'। भगवान भी नही कहते कि मेरा स्मरण करो; परन्तु जिसे अपना उद्धार करने की पडी होगी वह उसका स्मरण करने लगेगा।

सुखरूप जीवात्मा और सुखरूप परमात्मा, इन दोनो का तात्विक योग हो जाय तो फिर इनका सबध तोड़े नही टूटता। जिसके प्रति प्रेम हो वह दूर भी हो तो पास लगता है; कारण कि प्रेम तो इतना विशाल है कि आकाश का ग्रास बना ले!

पैसेवाले को दुनिया मान देती है; परन्तु द्रव्य से उत्पन्न होनेवाला अथवा द्रव्य के ऊपर आधार रखनेवाला सौभाग्य नाशवत है।

सब सुख के सगी हैं और उन्हे कुछ दिया जाय तभी वे काम आते हैं। दु:ख के समय या अत समय कोई काम नही आनेवाले। मेरे शक्तिहीन हो जाने पर नाक और आखे बहने लगेंगी और जोरू तथा बाल-बच्चे मुझे छोड़ कर चले जायगे। मेरी अपनी स्त्री भी कहेगी, 'मुआ, मरता भी तो नही है। सारा घर थूक-थूक कर खराब कर दिया।' हे प्रभो, अन्तकाल मे तेरे सिवा मेरा कोई संगी नही हैं।

पंडित और कथावाचक बड़े ज्ञानी तो होते हैं, परन्तु प्रेम-भक्ति के स्वाद से वे अनजान होते हैं।

बैल की पीठ पर शक्कर की बोरियां हो तो भी उसे कडवी ही खानी पडती है। कीमती चीजो की पेटिया ऊट की पीठ पर लादी जाती है, पर उसे

तो भूख लगने पर काटे ही चवाने पडते है । उसी तरह वडी-वडी आशाओ से नाना प्रकार की प्रवृत्तियो द्वारा प्राप्त की हुई दौलत यहा-की-यही रह जाती है और उसे कमानेवाले को उसके सगे-सवधी वाध-जकडकर यम के हवाले कर देते है ।

ससार के सामने नाचनेवाले भाडे के वंदर किस काम के ? जव यम उनके काम का हिसाव मागेगा तो उन्हे दात निकालकर खडा रहना पड़ेगा।

भूमि तो सारी पवित्र है, वासना ही अपवित्र है ।

एक ही गेहूँ से विविध प्रकार के खाद्य पदार्थ तैयार होते है और उन्हें खाने के लिए जीभ ललचाया करती है। भोग भोगने से उनके प्रति राग उत्पन्न होता है और उन्हें वार-वार भोगने का मन होता है। भोग्य पदार्थ जो अपने सामने से खिसक जाय, तो उनके प्रति नित्याकर्षण अधिक प्रवल होता जाता है। समुद्र के अन्दर एक-के-वाद-एक लहर उत्पन्न होती रहती है वैसे ही विपयो का आकर्षण है । अपने वालक को खिलाने के वाद भी उसकी मा उसे वारवार हाथ मे लेकर खिलाती है और खिलाते नही रुकती । छोटे वालक की वोली मे जो मिठास है, उसीका ऊपरी स्वाद चखने से वह माता ऐसी विवश हो जाती है कि उसका सेवन करते-करते उसे कदापि तृप्ति नही होती ।

एक में जिसकी वुद्धि स्थिर नही हुई, उसमे धैर्य नही है ।

अपने चित्त को देव के साथ वाध रक्खें तो वह उसके पास रहता है । ऐसा होने से ईश्वर के प्रकाश से अन्त करण हमेशा प्रकाशित रहता है । हृदय के अन्दर देव का प्रकाश होना अति उत्तम और मधुर है । ईश्वर का स्मरण करने से सारा व्रह्माण्ड पेट मे समा जाता है । ईश्वर के साथ यदि हम अपना प्रेम-सवध अखड रखे तो सव प्रकार के लाभ हमे आकर घर वैठे मिलते है ।

पानी में पानी मिल जाने पर कौन कह सकता है कि यह पहले का पानी है और यह वाद का ?

देह तो मृत्यु की खुराक है। फिर भी लोग दैहिक प्रपच का लोभ क्यों करते हैं और उसे सारवस्तु कैसे मान लेते हैं ?

सचित कर्म अपने-अपने विविध भोग भोगने के लिए यह शरीररूपी सुलभ स्थान स्वय तैयार कर लेते हैं।

मुझे हीनता से जीना पडे तो जीने से क्या फायदा ?

जो सकल्प-विकल्प के वशीभूत है, वह पराधीन है। काम तो सहस्रमुख राक्षस है जिसकी कभी तृप्ति नही होती। अतः हृदय के अन्दर उसे लय कर देने से सुख की प्राप्ति होती है।

सवसे वड़ा विघ्नकर्त्ता देहाभिमान है। इस अभिमान का जिसे स्पर्श भी नही हुआ वह कुलदीपक पैदा हुआ है ऐसा समझो।

संसार अपवित्र है ऐसा विचार मन मे लानेवाला ही अपवित्र है। भूत-मात्र के प्रति दया रखना ही मुख्य धर्म है और यही संत-कार्य कहलाता है।

किसीको अजीर्ण हो और उसे सिर और डाढ़ी मुडाने की सलाह दी जाय, तो यह उसका उचित इलाज नही है। अपने योग्य आवश्यक कर्मो को विधिवत् करना चाहिए और वे भी उतने ही करने चाहिए जितने आवश्यक हो।

दूध-पीते वच्चे की मा जिन-जिन पदार्थों का सेवन करती है उनका सर्वोत्तम भाग दूध मे आ जाने से वालक के पेट मे ही जाता है। यह सव ऋणानुवन्ध का संवध है, यह मैं सरल भाव से सवसे कहता हूँ।

चावल पक जाने पर उसे पुन. चूल्हे पर रखना व्यर्थ है। योग्य समय योग्य काम करने का नाम ही धर्म है। हर काम के लिए यथोचित समय होता है।

मन को जैसे विचारो के रंग में रगें, वैसे विचारो का रंग उसपर चढ जाता है और फिर उसे उसी वात की धुन लग जाती है।

भगवान के ऊपर जिसका दृढ विश्वास जम जाता है उसका हृदय तो अनायास ब्रह्मरस से भरपूर वन जाता है।

पत्थर के अन्दर भक्ति-भाव से देव की कल्पना करने से अपनी भावना के जोर पर भाविक भक्त तर जायंगे, परन्तु वह पत्थर तो पत्थर ही रहेगा।

कोई स्त्री अपनी अच्छी धोती फाड डाले और नग-धडग होकर खड़ी रहे, तो हम जानते हैं कि वह सचमुच पागल होगई है। परन्तु मन में तो पागल-पन न हो और कोई पागल होने का पाखड करे, और दूध व दही दोनो में पैर रखकर वडी-वडी वाते करे, उससे क्या होता है? मृगजल को देखने से और उसका सेवन करने से प्यास नही वुझती। जो अपनी कार्यसिद्धि के लिए जाते समय दूसरो की वाट जोहता नहीं खड़ा रहता, उसे ही सच्चा शूरवीर समझना।

दुराग्रह का ही नाम पाप है।

अपना मन वश मे करने का उपाय यदि हाथ मे आ गया तो फिर क्या दुर्लभ है?

कोई पत्थर के साथ अपना सिर फोडे तो उसका सिर फूट जायगा, परन्तु पत्थर नरम न होगा।

अवसर का लाभ उठानेवाले में युक्ति, वल, सवकुछ चाहिए। कव

लाभ होगा और कव हानि, इसका कोई नियम नही है। ये अकस्मात् होते है। जो काम करना हो, तद्विपयक पूर्ण विचार कर लेने के वाद योजनानुसार कार्य करना चाहिए, जैसे फसल की तैयारी में।

स्वरूप का ज्ञान होने पर सवकुछ शुद्ध हो जाता है। दुराग्रह नही रहता। वहां हर्ष-शोक का नाश हो जाता है। स्वरूप स्थिति मे आकर व्यक्ति दूसरे से निराला वोलने लगता है।

भगवान को सव कर्म अर्पण कर देने पर मन निश्चित हो जाता है। ऐसा न करने से व्यर्थ भ्रम उत्पन्न होता है और कर्म-वन्धन मे वध जाना पडता है। एक मुख्य देव की सेवा किये विना सव निरर्थक है।

परमार्थ के मार्ग मे वाधा डालनेवाले हमारे पाप-पुण्य है; और पाप-पुण्य का कारण देह-वुद्धि है। शूरवीर इस शिकजे से एक तडाके मे छूटकर मुक्त हो जाते है।

व्रह्मरस का भोजन करने से प्रत्येक ग्रास पर प्रेम-वृद्धि होती है।

✓ मन मे सच्ची लगन हो तो शक्ति भी आ जाती है। मन उदार हो जाय तो किस वात का अभाव रहे?

शोक करना वृथा है। उसमे से खराव कमाई की दुर्गंध आती है।

जिसके अन्त.करण मे जो दोष होता है वही उसे पीड़ा पहुचाता है।

राजा अन्याय से वर्तनेवालो को दण्ड दे, तो ये अधर्मी हरामखोर, लोगो को वडे कष्ट देगे। सन्त दूसरो को दु.ख देने का दुष्कर्म न करे परन्तु नीति का विचार करके अनीति पर चलनेवालो को दण्ड देना पड़े तो उससे पाप नही लगता।

अन्त करण के अन्दर जैसा स्वभाव होता है, वैसा बाहर प्रकट हो जाता है और उससे मनुष्य की पहचान अपने-आप हो जाती है ।

निश्चित रहने से मन समाधान अवस्था में रहता है ।

निन्दा और स्तुति दोनो मिथ्या है ।

क्रोध करने से पुण्य का नाश हो जाता है ।

युक्त आहार करना, नीति के रास्ते चलना, वैराग्य, आदि गुणो को धारण करना—ये ही तरने के मुख्य साधन है ।

अन्त करण को शुद्ध करना ही मुख्य कार्य है ।

क्षमा से ही सबका कल्याण होता है ।

मन के सकल्पो से पाप अथवा पुण्य हुए विना रहता ही नही । जो-कुछ होता है उस सबका मूल कारण मन है । मन का स्वभाव ऐसा है कि जिस रस में (विषय में) मिला दे उसके साथ मिल जाता है ।

क्रोध का उदय होने पर मुह से जो शब्द निकलते है, वे नरक-सरीखे होते है ।

पश्चात्ताप-रूपी तीर्थ में स्नान करके आत्म-बोध रूपीसूर्य के दर्शन करें तभी शुद्धि होती है ।

उपकार करना पुण्य है और सताना पाप । इसके अतिरिक्त और न कुछ पुण्य है, न पाप । सत्य भाषण और सत्य आचरण ही मुख्य धर्म है, मिथ्या-भाषण और मिथ्या आचरण ही पाप को बढानेवाले है । पाप-पुण्य का यही एक मर्म है, अन्य नही । श्रीहरि का नाम-स्मरण ही मुख्य गति है और उससे विमख होना ही नरकवास है । संतों की सगति ही स्वर्गवास है । संतो के

प्रति उदासीन भाव रखना या उन्हें धिक्कारना ही घोर नरक है।

देव की प्राप्ति का सच्चा मर्म यह है कि चित्त मे उपरति होनी चाहिए और रोम-रोम मे हरिप्रेम व्याप्त हो जाना चाहिए।

कामधेनु के बछडे को खाना न मिले, कल्पवृक्ष के नीचे वैठनेवाले को भूखो मरना पडे—यह कभी हो सकता है ?

कभी कोई मा किसी वस्तु को फेकने का ढोग करके वगल मे छिपा लेती है, वैसा ही खेल देव भी तेरे साथ लाड लड़ाता हुआ खेल रहा है।

एक वार जो इस जीव को उत्तम पुरुष के सुख का अनुभव हो जाय तो फिर वह कभी दु.ख का स्पर्श न होने देगा, कभी वियोग न होने देगा। देव सर्व-ऐश्वर्य-सम्पन्न है।

स्वय तर जाने मे क्या वड़प्पन है ? दूसरे जडवुद्धि लोगो को भी हरि-नाम प्रेमी कर देना चाहिए। पृथ्वी इतना वोझा उठाती है, इससे उसे स्वयं क्या लाभ ? गाय अपना दूध दूसरो को दे देती है, स्वयं एक वूद भी नही चखती। वर्षा वृष्टि करती है उससे उसके हाथ क्या आता है ? सूर्य, चन्द्र विश्राम लिये विना प्रकाशदान करते रहते है। क्यो ? परोपकारार्थ। ये सव काम राम ही करते है।

सत्य के विना काव्य मे रस नही आता। अनुभवरहित कविता लिखने का पाप कौन करे ? थोथे अनुभवहीन सकल्प लज्जास्पद है।

गुरु के वचन सुनकर जो उन्हे अन्त.करण मे धारण कर सकता है, उसे सरल अन्त.करणवाला कहना चाहिए, और जो धैर्य के अभाव से 'हाय ! मेरा क्या होगा ?' ऐसा रोना रोता फिरे, उसे हीनवुद्धि समझना।

जो अपना जीवभाव देव के चरणो में समर्पित कर देता है और जो संसार

की उपाधि में पडता है, वह कृपण है।

जिसकी बुद्धि स्वाधीन हो गई है, वह जो कुछ करता है वह साधनरूप ही हो जाता है। जो दूसरे की बुद्धि का अनुसरण करके काम करता है, उसे बड़ी हानि होती है।

जो अपनी इन्द्रियो को वश मे रखता है, वह सब जगह उत्तम सम्मान पाता है।

जो सारी बात का सार जान लेता है, उसे ज्ञानी समझना और जो दूसरे के साथ वादविवाद करने में अपना भूषण मानता है, उसे तुच्छ समझना।

जो गाय का और अतिथि का भाग निकालकर जीमता है, उसे शुद्ध आचरणवाला, और जो पगत में बैठे हुए दूसरे लोगो को न देकर अकेला ही खाता है, उसे अनाचारी कहना चाहिए।

देव भावानुसार फल देता है। सब अपने-अपने भावानुसार फल भोगते हैं। सचित कर्मों के सिवा और कुछ साथ नही जाता।

वासना को जड से उखाडे बिना भवजाल नही टूट सकता।

'प्रारब्ध मे लिखा होगा सो होगा'—ऐसा कोई न कहे। प्रयत्न किये बिना देव की प्राप्ति नही होती। प्रारब्धानुसार परिणाम आयगा, ऐसा विचार करके क्या कोई काटो पर भी चलता है? अथवा जीवित साप पकडने की हिम्मत रखता है? इसलिए 'आत्मोन्नति के कार्य में प्रारब्ध विघ्न नहीं कर सकता' ऐसा विचार करके हरकोई अपना हित साध सकता है।

देव को पैसे-टके की कोई गरज नही होती। उसे तो एकमात्र भक्ति-भाव की ही स्पृहा होती है।

सारी फजीहत का कारण यह है कि लोग जीभ और जननेन्द्रिय के गुलाम हो गए हैं।

यदि अपना मन शुद्ध होगा, तो अपना शत्रु भी मित्र हो जायगा और वाघ, सर्प, आदि तक हमको दु:ख न दे सकेंगे। मन की निर्मलता से विष भी अमृत हो जायगा। कोई हमपर प्रहार करेगा तो वह भी हमको लाभकर्त्ता होगा। धधकती अग्नि भी शीतलता प्रदायिनी हो जायगी। जो व्यक्ति मनुष्य-मात्र को अपने जीव के समान मानकर उनके ऊपर प्रेम रखता है, उसके प्रति प्राणीमात्र के मन में भी वैसा ही भाव उत्पन्न होगा। जिसे ऐसा अनुभव होने लगे उसपर नारायण की सम्पूर्ण कृपा हुई है, ऐसा समझना।